

संपादक-मंडल**अध्यक्ष**

प्रो. वरयाम सिंह

सदस्य

प्रो. सौमित्र मुखर्जी
 डॉ. संदीप चटर्जी
 डॉ. देवेन्द्र कुमार चौबे
 डॉ. डी.के. लोबियाल
 डॉ. मणीन्द्र नाथ ठाकुर
 श्रीमती पूनम एस. कुदेसिया

संपादन सहयोग

सुनीता

विशेष सहयोग

गणपत तेली

प्रबंध संपादन सहयोग

के.एम. शर्मा
 ओम प्रकाश दीवान
 डॉ. सूर्य प्रकाश

आवरण चित्र

डॉ. गोबिन्द प्रसाद

फोटो

वकील अहमद

टाइपसेटिंग

शिव प्रताप यादव

संपर्क

संपादक

जेएनयू परिसर
 हिंदी एकक
 301, प्रशासनिक भवन
 जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
 नई दिल्ली-110067

दूरभाष : + 91 11 26704023, 26704283

ई-मेल : jnuparisar@mail.jnu.ac.in &

hindiunit@mail.jnu.ac.in

संपादन/संचालन : अवैतनिक

जेएनयू की इस गृह पत्रिका

में प्रकाशित विचार

लेखकों के हैं। उनसे विश्वविद्यालय

अथवा संपादक मंडल का सहमत होना

अनिवार्य नहीं। उसके लिए

लेखक स्वयं उत्तरदायी है।

जेएनयू परिसर

वर्ष-1 अंक-2 जुलाई-दिसम्बर 2013

संपादकीय/2**बातचीत/3**

रमेशचंद्र गौड़, सुचेता महाजन

अध्ययन कक्ष/11

प्रमोद यादव

पाठ्यक्रम संवाद : इतिहास/13

दीपक कुमार, रजत दत्ता

सलिल मिश्र

हिंदी/19

रामबक्ष

लेखक की दुनिया/20

जी.जे.वी. प्रसाद

राजभाषा हिंदी/24

संदीप चटर्जी

गुणाकर मुले स्मृति व्याख्यान/26

उदय प्रकाश अरोड़ा, प्रवीण उपाध्याय

सृजन/30

सत्यपाल गौतम

कविता/32

अखलाक अहमद आहन, रजतरानी मीनू

हेमंत कुमार, उमेश बाबू, शंभुनाथ, गंगा

अनुवाद/36

आशीष अग्निहोत्री, शीतांशु भारती,

पी. कुमार मंगलम, सुभाष कुमार

यात्रा वृत्तांत/43

पुरुषोत्तम अग्रवाल

लेख/45

कविता अरोड़ा, अनु सिंह एवं मीनाक्षी चौधरी

मेरे लिए जेएनयू/48

चोखेलाल

यादों के गलियारे से/50

मीता नारायण, प्रणय कृष्ण श्रीवास्तव

मो. जाहिदुल दीवान

गंगा ढाबा/59

जितेंद्र यादव

गतिविधियाँ/पत्र/60

बौद्धिक चेतना का प्रतीक है जेएनयू

पहला स्मृति व्याख्यान आयोजित

संपादकीय

जेएनयू परिसर के प्रवेशांक की तैयारी के समय हम झिझक रहे थे पता नहीं अंक कैसा निकलेगा और पाठकों के बीच इसकी प्रतिक्रिया कैसी रहेगी। संपादक मंडल, हिंदी एकक, प्रोफेसर गोबिन्द प्रसाद ने एवं छात्र सहयोगियों ने मिलकर जैसा अंक निकाला, उसकी विश्वविद्यालय और बाहर एक समान मिल रही सराहना से हम उत्साहित हैं।

परिसर के दूसरे अंक के लिए काफी सामग्री प्राप्त हुई है। सभी रचनाओं को इस अंक में स्थान नहीं मिल पाया है। रचनाकार प्रायः यह भूल जाते हैं कि जेएनयू परिसर एक गृह पत्रिका है न कि अकादमिक या साहित्यिक। हमारा प्रयास रहता है कि पत्रिका में विश्वविद्यालय के सभी समुदायों को प्रतिनिधित्व मिले और साथ में जितने स्तम्भों की परिकल्पना की गई थी, उनके अनुरूप सामग्री दी जा सके।

इस अंक में इतिहास अध्ययन—अध्यापन और इतिहास लेखन पर प्रख्यात इतिहासवेत्ताओं दीपक कुमार, रजत दत्ता, सलिल मिश्र और सुचेता महाजन के लेख/साक्षात्कार दिए जा रहे हैं। इतिहासकार उदय प्रकाश अरोड़ा का गुणाकर मुले स्मृति व्याख्यान भी दिया जा रहा है। केन्द्रीय पृष्ठों में प्रख्यात दर्शनविद सत्यपाल गौतम की कविताएँ दी जा रही हैं। गौतम पंजाबी के समकालीन रचना संसार से निकट से जुड़े रहे हैं। पुस्तकालयाध्यक्ष रमेश चन्द्र गौड़, प्रमोद यादव, रामबक्ष, जी जे वी प्रसाद, संदीप चटर्जी, प्रवीण उपाध्याय, कविता अरोड़ा, अनु सिंह, मीनाक्षी चौधरी, चोखेलाल, मीता नारायण, प्रणय कुमार श्रीवास्तव, मो. जाहिदुल दीवान, जितेन्द्र यादव के विचार, अखलाक अहमद आहन, रजत रानी मीनू, हेमंत कुमार, उमेश बाबू, शंभूनाथ, गंगा की कविताएँ, आशीष अग्निहोत्री, शीतांशु भारती, पी. कुमार मंगलम, सुभाष कुमार की अनुदित रचनाएँ, पुरुषोत्तम अग्रवाल का यात्रा—वृत्तांत इस अंक की

मैं विश्वविद्यालय की सक्रिय सेवा से निवृत्त हो रहा हूँ। मुझे आशा है कि जेएनयू परिसर निरन्तर और बेहतर सामग्री के साथ पाठकों के समक्ष आता रहेगा। यह मात्र औपचारिकता नहीं है, मैं कुलपति सहित सभी अधिकारियों का आभारी हूँ जिन्होंने समय—समय पर जेएनयू परिसर के निर्बाध प्रकाशन और हिंदी के प्रोत्साहन से जुड़ी गतिविधियों में सहयोग किया है। मैं संपादक मण्डल, हिंदी एकक और इस पत्रिका के प्रकाशन से प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े विश्वविद्यालय समुदाय के सभी सदस्यों का भी आभारी हूँ।

—वरयाम सिंह

जेएनयू परिसर के प्रवेशांक पर पाठकों के पत्र

जेएनयू परिसर का अंक मिला। पत्रिका वाकई काफी अच्छी बनी है। शुभकामनाएँ।

— के. श्रीनिवासराव, सचिव, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली।

जेएनयू परिसर का अंक मिला। अच्छा लगा कि जेएनयू ने हिंदी में एक पठनीय पत्रिका का प्रकाशन किया है।

— प्रेमकुमार मणि, लेखक, पटना, बिहार

जेएनयू परिसर का अंक देखकर पुराने दिनों की याद आ गई। पत्रिका के साथ भावनात्मक लगाव स्वाभाविक है। संपादक मंडल को बधाई; इस आशा के साथ की यह कोशिश बनी रहेगी।

—प्रो. श्यौराज सिंह बेचैन, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

शिक्षण संस्थानों में लाइब्रेरियन की भूमिका 'हॉट-प्रोफेशन' के रूप में देखी जानी चाहिए



डॉ. रमेश चन्द्र गौड़ केन्द्रीय पुस्तकालय जे.एन.यू. के पुस्तकालयाध्यक्ष का पद संभालने से पूर्व आई.जी.एन.सी.ए. तथा टी.आई.एफ.आर. जैसे संस्थानों में कार्य कर चुके हैं। वे फिलहाल पुस्तकालय के ज़रिए जे.एन.यू. के छात्रों के लिए सूचना प्रौद्योगिकी की दुनिया में ज़्यादा स्पेस बनाने के लिए कटिबद्ध हैं। उनसे यह बातचीत की है जेएनयू की शोध छात्रा देविना अक्षयवर ने।

जे.एन.यू. को बतौर लाइब्रेरियन ज्वाइन करने से पहले आपके कैरियर का लंबा समय आई.जी.एन.सी.ए. तथा टी.आई.एफ.आर. जैसे सरकारी और गैर-सरकारी संस्थानों में गुजरा। जे.एन.यू. सेंट्रल लाइब्रेरी के लाइब्रेरियन का पद संभालते हुए आपके क्या अनुभव रहे ?

जे.एन.यू. का लाइब्रेरियन बनना एक चुनौती के रूप में मेरे सामने रहा। किसी भी शिक्षण-संस्थान में पुस्तकालय की बहुत अहम भूमिका होती है। छात्रों से लेकर फ़ैकल्टी तक की हर एक अकादमिक सूचना और शोध कार्य से जुड़ी ज़रूरतों को पूरा करने की जिम्मेदारी काफी हद तक पुस्तकालय पर होती है। इसीलिए मैं समझता हूँ कि विश्वविद्यालय के लक्ष्यों को पूरा करने के लिए पुस्तकालय को अपना पूरा सहयोग देना चाहिए। यह तभी हो सकता है जब वह हर तरह के माध्यम के तौर पर अपने उपयोगकर्ताओं को सही समय पर उपयुक्त जानकारी और स्रोत प्रदान करने में सक्षम हो। जे.एन.यू. के छात्र समुदाय के अपने निजी और खास स्वभाव को मद्देनज़र रखते हुए, जे.एन.यू. का हिस्सा बनना मेरे लिए गर्व की बात है।

भारतीय समाज में जिस प्रकार इंजीनियरिंग, मेडिकल साइंस और प्रबंधन जैसे क्षेत्रों में आमतौर पर कैरियर बनाने का झुकाव रहता है। ऐसे समाज में आपने लाइब्रेरी साइंस को कैरियर के रूप में चुना। इसके पीछे कोई खास वजह ?

यह सवाल जितना जटिल है, उतना दिलचस्प भी ! दरअसल मैं खुद ही साइंस का छात्र रहा हूँ। बी.एस.सी. पूरा करने के बाद मैंने लाइब्रेरी साइंस और पोस्ट बी.एस.सी. डिप्लोमा इन कंप्यूटर एप्लीकेशंस हासिल किया। कैरियर के तौर पर मेरे पास ये दोनों विकल्प थे, लेकिन पुस्तकालय के लिए मेरे पैशन और रुचि के कारण मेरा इसके प्रति झुकाव रहा। जबकि मुझे इंजीनियरिंग की पढ़ाई के लिए छात्रवृत्ति के लिए भी चुना गया था, लेकिन किताबों से मुझे लगाव है क्योंकि किताबें समाज के बहुस्तरीय पहलुओं को उजागर करती हैं। इसीलिए मुझे ऐसा लगता है कि किताबों के माध्यम से एक तरह की समाज-सेवा भी की जा सकती है। किताबों का संरक्षण, उनकी देख-भाल और उनका सही उपयोग, एक तरह से ज्ञान को संरक्षित करना है जिससे समाज की आने वाली पीढ़ियाँ लाभान्वित हो सकें। साथ ही

लाइब्रेरी के उपयोगकर्ताओं को ज़्यादा से ज़्यादा टेक्नीकली-फ़ंडली बनाकर लाइब्रेरी इंफ़ार्मेशंस की परिसीमा को और बढ़ाना भी मेरा लक्ष्य रहा है। आखिरकार वे देश का भविष्य है !

लाइब्रेरी साइंस को एक विषय के रूप में आप किस तरह देखते हैं ?

यह अफ़सोस की बात है कि एक विषय के तौर पर लाइब्रेरी साइंस के साथ प्रायः कम ही न्याय होता रहा है। शिक्षण-संस्थानों में लाइब्रेरियन की भूमिका हमेशा बैकग्राउण्ड में ही रहती है, इसको एक 'हॉट-प्रोफेशन' के रूप में नहीं देखा जाता। आमतौर पर लोगों की यही धारणा रहती है कि लाइब्रेरियन का काम काउण्टर पर किताबें इश्यू करना होता है (!) लेकिन विश्वविद्यालय के पर्फ़ॉमेंस और आउटपुट में उसके बैकबोन अर्थात् पुस्तकालय का कितना सहयोग रहता है। प्रायः इसे नज़रअंदाज़ किया जाता है। दरअसल समस्या दो स्तरों पर है – एक स्तर पर समाज की ओर से इस विषय की उपेक्षा और दूसरे स्तर पर लाइब्रेरी साइंस को एक प्रोफेशन के तौर पर देखने का सरकार का नज़रिया। लाइब्रेरियन के सिलेक्शन के आधार वे ही हैं जो किसी प्रोफ़ेसर के होते हैं, लेकिन जहाँ किसी प्रोफ़ेसर के अवकाश लेने की उम्र 65 साल है, वहीं लाइब्रेरियन के लिए 62 साल। जबकि सच्चाई तो यह है कि एक लाइब्रेरियन की भूमिका में एक अकादमिशियन, रिसर्चर और एडमिनिस्ट्रेटर, तीनों की भूमिका निहित है, लेकिन समाज में लाइब्रेरियन को यह सम्मान ना के बराबर मिलता है। इस प्रोफ़ेशन के प्रति इस तरह की धारणा बदलनी चाहिए।

आजकल दूरस्थ-शिक्षा माध्यमों के आने से इस विषय के अद्ययनकर्ता तो मिल जाते हैं, लेकिन पास-आउट्स और रोजगार के स्तर पर विषमता के चलते, बहुत लोग बेरोज़गारी का सामना करते हैं और विवशतः कई प्राइवेट संस्थानों में योग्यता से कम तनखाह पर काम करते हैं। इससे लाइब्रेरियन का शोषण ही नहीं होता बल्कि इस प्रोफ़ेशन का रेप्यूटेशन भी कम होता है। इसीलिए यह बेहद ज़रूरी है कि इस प्रोफ़ेशन को लेकर समाज और नौकरशाहों का नज़रिया बदले क्योंकि लाइब्रेरी साइंस का मतलब केवल लाइब्रेरी नहीं है, बल्कि इसमें कंप्यूटर साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी भी शामिल है। सर्वपल्ली राधाकृष्णन के अनुसार, 'Library is the heart of an academic

institution' इस बात को समझने की आवश्यकता है कि किसी भी विश्वविद्यालय का रिसर्च आउटपुट उसकी रीड (लाइब्रेरी) पर ही टिका है।

लाइब्रेरी के जिस रोल मॉडल के बारे में आप सोचते हैं, जे.एन.यू. सेंट्रल लाइब्रेरी को उसी के अनुरूप बनाने के लिए आपने कौन से प्रयास किए और उसमें किस हद तक सफल रहे ?

मैंने अक्टूबर 2011 में जे.एन.यू. ज्वाइन किया और आते ही मैंने गौर किया कि जे.एन.यू. लाइब्रेरी की स्थिति काफी चिंताजनक थी। लाइब्रेरी की तरफ से छात्रों और फ़ैकल्टी के लिए सेवाएं बिल्कुल ही सिस्टेमैटिक और योजनाबद्ध नहीं थीं। प्रायः लाइब्रेरी को लेकर एक नकारात्मक नज़रिया विकसित हो गया था। रीडरशिप के कम होते स्तर के साथ-साथ, फ़ैकल्टी ने भी लाइब्रेरी के साथ जुड़ना कम कर दिया था, क्योंकि उनकी किसी भी अकादमिक रिसर्च से संबंधित माँगों को पूरा नहीं किया जाता था। सालों तक नई किताबों की कोई खरीदारी नहीं हुई थी। दूसरी बड़ी समस्या थी – लाइब्रेरी स्टाफ़ के लिए कई पद वैकेंट होना। तकनीकी स्तर पर भी आधी-अधूरी सूचनाएं, डेटाबेसज़ या स्रोतों का डुप्लिकेट सबस्क्रिप्शन और ई-बुक्स कल्चर के न होने के कारण छात्रों को पर्याप्त स्रोत नहीं मिल पाते थे। उनकी जानकारी का स्रोत कैंपस तक ही सीमित था। पुराने कैटैलॉग्स, फ़र्नीचर के साथ ही लॉकर्स की जगह बुक केसज़ का प्रयोग होता था। काम काफी चुनौतीपूर्ण था।

लेकिन लाइब्रेरी मैनेजमेंट और स्टाफ़ के लगातार सहयोग के चलते, तब से लेकर आज तक 90 प्रतिशत खाली पदों पर स्टाफ़ की नियुक्ति हो चुकी है। 2 डिप्यूटी लाइब्रेरियन, 4 असिस्टेंट लाइब्रेरियन, 4 सेमी-प्रोफ़ेशनल एसिस्टेंट और 4 टेकनिकल-असिस्टेंट की नियुक्ति हो चुकी है। अन्य पदों के लिए लोगों के इंटरव्यू-प्रक्रिया अभी जारी हैं। लाइब्रेरी को अद्यतन बनाने के लिए स्टाफ़ को एक साल की तकनीकी और मैनेजमेंट ट्रेनिंग दी गई। जिसके लिए बाहर से ट्रेनर्स को लाया गया। लाइब्रेरी के उपयोगकर्ताओं की संख्या बढ़ाने के लिए व्याख्यानमाला, संगोष्ठी, कार्यशाला और अनुशीलन कार्यक्रम आदि आयोजित किए गए।

एक साल के अंदर-अंदर 12 डेटाबेसज़ स्थापित किए गए और एक लाख से भी ज़्यादा ई-बुक्स लांच हुए। इसके साथ ही, 'सॉफ़्टवेयर अपग्रेडेशन' के बाद लाइब्रेरी का सर्वर लाइब्रेरी की सीमा से बाहर भी प्रयोग में लाने की सुविधा मिली। अब छात्र कैंपस के अंदर या बाहर, कहीं से भी एवं किसी भी समय जे. एन.यू. लाइब्रेरी के ई-रिजोर्सज़ और डिजिटाइज़्ड थीसिस और डिसर्टेशनस को ऑनलाइन एक्सेस कर सकते हैं।

इसके अलावा, पिछले साल, मई से लेकर सितंबर तक, लाइब्रेरी बिल्डिंग के अंदर बड़े स्तर पर मरम्मत-कार्य भी किए गए जहां पुराने टूटे-फूटे फ़र्नीचर को नए इन्फ्रास्ट्रक्चर से रिप्लेस किया गया। पुस्तकालय भवन के 9वें तल, जो पहले डम्पिंग ऐरिया जैसा था, उसको साफ़ कराकर उसे सरकारी डॉक्यूमेंट डेटा

सेक्शन बनाया गया। इसी प्रकार थीजिस को भी तीन जगहों से हटाकर एक ही जगह उनका एक अलग सेक्शन बनाया गया। पिछले तीन-चार सालों से लाइब्रेरी में जिन किताबों की मांग की गई थी, उनकी खरीदारी हाल ही में की गई। इसके साथ-साथ नए फ़ैकल्टी के लिए यह भी सुविधा उपलब्ध कराई गई कि वे किसी भी बुक की ऑनलाइन खरीदारी कर सकें। फ़ैकल्टी द्वारा लिखी किताबों की तीन प्रतियां लाइब्रेरी की तरफ से खरीदी जाती हैं और उनके लेखन को प्रोत्साहन देने के लिए जे.एन.यू. के इतिहास में पहली बार नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेला (2012) में जे.एन.यू. का भी स्टॉल लगा, जहां उनकी किताबों को लाखों लोगों तक पहुँचाया गया। इसके चलते, जहां उनके योगदान को प्रसिद्धि मिली, वहीं जे.एन.यू. के रिसर्च आउटपुट की भी सराहना हुई।

इसके अतिरिक्त छात्रों के लिए लेखकों एवं प्रकाशकों की ओर से नियमित कार्यशालाएं चलाई जाती हैं, जिसके दौरान, लेख लिखने का तरीका और लेखन-क्षमता को कैसे परिमार्जित करें, इन सबका प्रशिक्षण दिया जाता है। सिंगल विण्डो एक्सेस की सुविधा से अब एक ही विण्डो के जरिए जे.एन.यू. लाइब्रेरी के सभी डेटाबेसज़ को एक्सेस किया जा सकता है।

जे.एन.यू. से जुड़ने के बाद मेरा लक्ष्य यही रहा है कि जे.एन.यू. पुस्तकालय को केवल भारत में ही नहीं बल्कि पूरे विश्व के बेहतरीन पुस्तकालयों में गिना जाए। खुशी की बात यह है कि इस लक्ष्य को पूरा करने के लिए मुझे छात्रों, फ़ैकल्टी, लाइब्रेरी स्टाफ़ और खास तौर पर हमारे वी.सी. का सहयोग प्राप्त है।

जे.एन.यू. सेंट्रल लाइब्रेरी के कैटैलॉग में प्रमुख रूप से तीन विषयों की किताबें मिलती हैं (1) भाषा एवं साहित्य, (2) समाज विज्ञान और (3) विज्ञान। इन किताबों के अतिरिक्त, अन्य आंकड़ा संचयों और शोध 1 के स्रोतों की उपलब्धि के लिए पुस्तकालय किन-किन संस्थानों से सहयोग प्राप्त करता है ?

मैं खुद कई कमेटीज़ और अकादमिक एडवायज़री बोर्ड का सदस्य हूँ। इसके चलते मुझे कई देशी तथा विदेशी संस्थानों के साथ सहयोगिता प्राप्त करने का मौका मिला, ताकि जे.एन.यू. लाइब्रेरी के डेटाबेसज़ और रिजोर्सज़ में बढ़ोतरी हो। यूजीसी ने 'Inflibnet' नाम से एक यू.जी.सी. इन्फोनेट प्रोग्राम लांच किया है जिसके तहत, देशभर के सभी केंद्रीय विश्वविद्यालयों को 22 डेटाबेसज़ उपलब्ध कराए जाते हैं।

जे.एन.यू. से प्रकाशित जर्नल्स का भी दूसरे संस्थानों के साथ आदान-प्रदान होता है। इसके अलावा कई सरकारी और गैर सरकारी संस्थानों एवं मंत्रालयों की तरफ से पुरस्कार के रूप में भी सहयोग मिलता है।

ओ.यू.पी. के जी.ए.यू.जी.ई. नामक प्रोग्राम के तहत जे.एन.यू. को छः महीनों के लिए ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी के लाइब्रेरीज़ के पाँच डेटाबेसज़ का निःशुल्क एक्सेस दिया जाता है। इसी प्रकार यू. एन. वर्ल्ड बैंक और यूनेस्को आदि अंतर्राष्ट्रीय संस्थानों के साथ जे.एन.यू. पुस्तकालय जुड़ा हुआ है, जिससे लाइब्रेरी स्टाफ़ को

ट्रेनिंग का लाभ मिला और दूसरे लाइब्रेरीज की भी मदद करने का मौका मिला। इससे न केवल जे.एन.यू. की अपनी अलग पहचान बनी, बल्कि अपने सहयोग संस्थानों से उसे अधिकतम वित्तीय सहायता भी मिली है। इसके अलावा, जे.एन.यू. लाइब्रेरी में 'TurnItIn' नामक सॉफ्टवेयर भी प्रयोग में लगाया गया जिससे नकल (प्लेजियारिज़्म) को आसानी से चैक किया जा सके।

एक तरफ़ जहां जे.एन.यू. लाइब्रेरी में 'Newspaper Direct' नामक डेटाबेस के जरिए विश्व के 92 देशों से, 52 भाषाओं में, 23,000 अखबारों की ऑनलाइन उपलब्धता है (जिससे एस.एल.एल. एण्ड सी.एस. को सबसे ज्यादा लाभ पहुंचता है), वहीं 7.5 लाख न्यूज़ क्लिपिंग्स को डिजिटलाइज़्ड करके उनकी पहुंच की सीमा बढ़ा दी गई है। अखबारों की 'Physical clipping' के डिजिटलाइज़ेशन के बाद गुजरात की एक लाइब्रेरी को डोनेट किया गया है।

तकनीकी विकास के चलते, पिछले वर्षों में ई-लर्निंग, ई-लाइब्रेरी और दूरस्थ-शिक्षा के उभरते स्वरूप के चलते लाइब्रेरी साइंस के क्षेत्र में आए बदलाव के बारे में आपकी क्या प्रतिक्रिया है ?

यह सवाल मुझसे पहले भी पूछा जा चुका है कि ई-जर्नल्स, ई-बुक्स और एक पेपरलैस सोसाइटी में किताबों की क्या जरूरत है ? मेरा मानना है कि पुस्तकालय मात्र अध्ययन और तथ्यज्ञान का संचयन ही नहीं है, यह एक माहौल है जहां ज्ञान अर्जित किया जाता है, उसका आदान-प्रदान होता है। इसीलिए हमें इस माहौल को अधिक से अधिक सजीव बनाना चाहिए। इसके आस-पास के वातावरण को अधिक आकर्षक बनाने की आवश्यकता है। हमारे यहां गुरुकुल संस्कृति हुआ करती थी जहां पढ़ाई के लिए एक खास जगह हुआ करती थी, आज की तारीख में अध्ययन के लिए वैसी खास जगह पुस्तकालय हो सकती है। यह बात इस तथ्य से साबित होती है कि पिछले दो वर्षों में जे.एन.यू. लाइब्रेरी के मैनेजमेंट सिस्टम में लाए गए सुधारों के चलते, इसके उपयोगकर्ताओं की संख्या दुगुनी-तिगुनी हो गई है।

हमारे यहां हेलेन कैलर यूनिट की ओर से दृष्टि बाधित छात्रों के लिए नए सॉफ्टवेयर और एसिस्टीव टेक्नॉलोजीज उपलब्ध कराई गई हैं, उनको ट्रेन किया गया, साथ ही जे.एन.यू. के इतिहास में पहली बार इन छात्रों को (एम.फिल/ पीएच-डी.) निःशुल्क लैपटॉप और डिजिटल वॉइस रिकॉर्डर भी उपलब्ध कराए गए हैं। इस तरह 'लाइब्रेरी' की एक नई परिभाषा उभरकर सामने आई है।

जे.एन.यू. लाइब्रेरी की अल्प समय में इतनी सारी उपलब्धियों के बाद उसे ज्यादा यूज़र-फ्रेंडली बनाने के लिए आपकी भावी योजनाएं क्या हैं ?

छात्रों के लिए बार-कोड इश्यू/रिटर्न सिस्टम के साथ ही फिज़िकली इम्पेयर्ड छात्रों के लिए अनुकूल शौचालय और

वीलचैयर्ज की सुविधा उपलब्ध कराई गई है। निकट भविष्य में छात्र समुदाय को ज्यादा से ज्यादा टेक्नीकली एडवांस्ड बनाने की मेरी कोशिश रहेगी। इसी महीने की नौ तारीख को यहां वर्ल्ड बैंक की तरफ से ओपन-डेटा और ओपन-इनफॉर्मेशन पर एक वर्कशॉप भी आयोजित की जाएगी साथ ही विदेशी भाषाओं का अध्ययन करने वाले छात्रों के प्रोत्साहन के लिए विभिन्न कॉलेक्शंस जैसे 'ऑस्ट्रेलियन रिज़ोर्स सेंटर' और 'चाइनीज कॉर्नर' जैसी सुविधाएं भी प्राप्त की जा रही हैं। जल्द ही जे.एन.यू. लाइब्रेरी में हम आर.एफ.आई.डी. टेकनॉलॉजी इस्तेमाल करने जा रहे हैं। इस रेडियो फ़्रिक्वेंसी आइडेंटिफायर के जरिये छात्र सेल्फ-चैट इश्यू-रिटर्न के तहत स्वयं ही किताबों का ऑनलाइन इश्यू-रिटर्न कर सकते हैं। इसी प्रकार शल्फ से अलग रखी किताबों को ट्रेस करने में भी आसानी होगी। इसके अतिरिक्त, लाइब्रेरी के अंदर छात्र-समुदाय अपनी पर्सनल किताबें और इश्यूड किताबें भी ले जा पाएंगे। हमारी भावी योजनाओं के अंतर्गत एक और महत्वपूर्ण प्लान है - जे.एन.यू. सेंट्रल लाइब्रेरी के 24x7 रीडिंग हॉल (6 गौलपुर हाउस) की बैठक क्षमता को बढ़ाना। 'अर्न वाइल लर्न' नामक एक स्कीम भी लागू करने की योजना है। जिसके तहत जे.एन.यू. के छात्रों को लाइब्रेरी के कैटेलॉगिंग, एक्सेस, रिफ्रेंस सेवाओं एवं रिसर्च संबंधी गतिविधियों के क्षेत्र में पेमेंट बेजिस पर जॉब दिए जाएंगे। इससे छात्रों को जहां एक तरफ़ वित्तीय सहायता प्राप्त होगी, वहीं दूसरी तरफ़ उनको इस तरह के काम करने का अनुभव भी प्राप्त होगा।

मनोरंजन के नए साधनों के आने से नई पीढ़ी की दिलचस्पी पुस्तकालय की तरफ कम होती जा रही है। जे.एन.यू. जैसे संस्थान यद्यपि कुछ अपवाद हैं। जे.एन.यू. के बाहर पुस्तकालय की क्या स्थिति है ?

यह बेहद दुख की बात है कि हमारे देश में सार्वजनिक पुस्तकालय बड़े पैमाने पर उपेक्षित हैं। आज की तारीख में हमारे समाज में हर रोज़ हैरान कर देने वाले अपराधों की बढ़ती दर को देखते हुए मुझे लगता है कि समाज में ऐसे अपराधी तभी उभरते हैं जब उनके यहां शिक्षा की कमी होती है। हमारे समाज में लाइब्रेरी के साथ वयस्क शिक्षा का कोई जुड़ाव नहीं है। साक्षरता को शिक्षा का पर्याय नहीं माना जा सकता। किताबें पढ़ने से केवल ज्ञान ही नहीं बढ़ता, बल्कि आपके मानवीय गुण भी विकसित होते हैं। लेकिन हमारे समाज में इसका अभाव साफ़ दिखाई देता है। भारत के अधिकतम विश्वविद्यालयों में लाइब्रेरियन के पद खाली हैं क्योंकि उनके महत्व को ही नहीं पहचाना गया। कई विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में वित्तीय अभाव एक बड़ी समस्या है। स्टाफ की तरफ से छात्रों की मांगों की उपेक्षा, हमारे देश में एक लाइब्रेरी इंफॉर्मेशन पॉलिसी, एक-सूत्रता एवं पारदर्शिता का अभाव, इन सारे तत्त्वों ने हमारी शिक्षा-प्रणाली पर नकारात्मक प्रभाव डाला है, जिससे हमारे यहां कभी एक पुस्तकालय संस्कृति विकसित नहीं हो पाई। समाज को पुस्तकालयों के प्रति ज्यादा संवेदनशील बनाने के लिए इन सारे पहलुओं पर अमल करने की जरूरत है।



इतिहास समाज में परिवर्तन लाने का सशक्त माध्यम है

सुचेता महाजन विश्वविद्यालय के इतिहास अध्ययन केंद्र में इतिहास की प्रोफेसर हैं। यहाँ प्रस्तुत है, उनसे सुनीता की हुई बातचीत के महत्वपूर्ण अंश।

आपका सम्बन्ध जेएनयू के साथ कैसे बना ? इसके बारे में बताइए ?

जेएनयू से मेरा सम्बन्ध बहुत पुराना है। मैं जेएनयू के इतिहास विभाग में सन् 1977 में छात्रा के रूप में आयी थी। उस समय मैं एम.ए. की विद्यार्थी थी। इसके बाद यहीं से एम.फिल. और पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। मेरे शोधनिर्देशक प्रो. सर्वपल्ली गोपाल थे जो इस विभाग के संस्थापक थे। वे महामहिम राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन के बेटे और प्रसिद्ध इतिहासकार थे। ये मेरा सौभाग्य है कि मुझे उनके साथ काम करने का अवसर मिला। वे ब्रिटिश साम्राज्य के विशेषज्ञ थे। मेरे शोध-प्रबन्ध का विषय 'ब्रिटिश साम्राज्य की सत्ता का पतन' था।

क्या आपके व्यक्तित्व और जीवन पर आपके अध्यापकों का प्रभाव पड़ा ?

हाँ, जरूर पड़ा। यदि ऐसा न होता तो आज मैं जिस मुकाम पर हूँ वहाँ न होती। मेरी सफलता का संपूर्ण श्रेय मेरे अध्यापकों को जाता है। उस समय जेएनयू का सी.एच.एस. विभाग पूरे भारत में इतिहास का प्रतिष्ठित केन्द्र था, जिसमें रोमिला थापर, सतीश चन्द्र, एस. गोपाल और विपिन चन्द्र आदि के नाम शामिल थे। ये सभी अपने-अपने क्षेत्र के विशेषज्ञ और विश्व विख्यात इतिहासकार थे जिनका प्रभाव मेरे ऊपर पड़ना लाजमी था। विशेष रूप से मैं विपिन चन्द्र का नाम लेना चाहूँगी। वे इतना ऊर्जादायक और प्रभावशाली पढ़ाते थे कि उनकी क्लास जब शुरू होती थी तो हमें पता रहता था लेकिन कब समाप्त होती थी इसका हमें पता ही नहीं चलता था। उनके व्याख्यान इतने रोचक और सारगर्भित होते थे कि उनमें डूबकर हमें समय का आभास नहीं रहता था। उनके अधिकार क्षेत्र में मूलतः आजादी की लड़ाई, वामपंथी विचारधारा, भगतसिंह तथा उनके साथी क्रान्तिकारी और गाँधी जी का पुनःमूल्यांकन, साम्राज्यवाद और आर्थिक राष्ट्रवाद आदि थे। उनसे सीखना मेरे भविष्य और शैक्षणिक जीवन के लिए दूरगामी सिद्ध हुआ जिसने मेरे जीवन को एक नयी दिशा और भावभूमि प्रदान की।

उस समय की छात्र राजनीति का माहौल और उसमें विद्यार्थियों का योगदान कैसा था ?

उस समय का राजनीतिक माहौल पूरी तरह से ऊर्जादायक था। यहाँ पर होने वाली गोष्ठियों, जुलूसों और चर्चाओं में विद्यार्थी अर्थात् समस्त सहपाठी बढ़-चढ़ कर भाग लेते थे। वर्ष 1975 में आपातकालीन स्थिति लागू हुई लेकिन इससे विद्यार्थियों के

मनोबल पर किसी तरह का नकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ा। वे सरकार की अनुचित नीतियों और कार्यप्रणाली का जमकर विरोध करते थे। यहाँ पर मैं एक बात कहना चाहूँगी कि जेएनयू एक ऐसा शैक्षणिक संस्थान है जहाँ पर किसी विचार या विचारधारा को आपके ऊपर थोपा नहीं जाता है। आपको स्वयं के विचार अर्थात् स्वयं की स्वतंत्र सोच को विकसित करने का अवसर दिया जाता है। किसी तरह का दबाव नहीं होता। आप तथ्यों और विचारों को लेकर स्वयं सोचते हैं। उनका मूल्यांकन और विश्लेषण करते हैं तथा निर्णय तक पहुँचते हैं। आप खुलकर अपनी बात रख सकते हो। यह स्वतंत्र सोच आपके शोध कार्य में भी नज़र आती है। जहाँ तक मेरे सहपाठियों का सवाल है। उनमें से ज्यादातर इतिहास के विद्यार्थी नहीं थे। मैं स्वयं भी इतिहास की विद्यार्थी नहीं थी। मैं अर्थशास्त्र से स्नातक करके आयी थी। इसी तरह से मेरे सहपाठी आई.आई.टी., इंजीनियरिंग, अंग्रेजी, फ्रेंच, भौतिक विज्ञान तथा अन्य पाठ्यक्रमों से आये थे, जिनमें भगवान जोश, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी, पी. साईनाथ और डेविड थोमस का नाम उल्लेखनीय है। आज ये सभी लोग विख्यात और प्रतिष्ठित पदों पर कार्यरत हैं। उस दौरान हम सब लोग अंतर्विषयक अध्ययन कर रहे थे, लेकिन इसमें इतिहास सर्वोपरि था, क्योंकि इतिहास समाज में परिवर्तन लाने का सशक्त माध्यम है। हम सभी समाज में परिवर्तन लाना चाहते थे। जिसके लिए इतिहास ही वह हथियार था जो समाज में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक स्तर पर बदलाव ला सकता था। इसके लिए हमने आपातकाल समाप्त होने के पश्चात् छात्रों का एक छोटा-सा समूह भी बनाया था। जिसका नाम 'फ्री थिंकर्स' अर्थात् मुक्त विचारक समूह था। यह समूह किसी राजनीतिक संगठन और पार्टी से संचालित नहीं था। इसका सम्पूर्ण कामकाज छात्रों के माध्यम से चलाया जाता था। इस समूह द्वारा एक पत्रिका भी निकाली जाती थी, जिसका शीर्षक 'एनटीफोन' था। इसके सक्रिय कार्यकर्ताओं ने जेएनयू की राजनीति पर अपनी अमिट छाप छोड़ी थी। आज ये कार्यकर्ता चाहे देश में हो या विदेश में इन्होंने प्रत्येक क्षेत्र में कुछ नया किया। हमारे देश और समाज को कुछ नवीन दिया। इसका कारण यह था कि यहाँ के विद्यार्थियों में सामाजिक और राजनीतिक चेतना थी, जिसे कहीं से आयात नहीं किया जा सकता है। जेएनयू इसे अपने विद्यार्थियों में स्वयं विकसित करता है।

उस दौरान विद्यार्थियों और अध्यापकों का आपसी सम्बन्ध कैसा था ?

उस समय जेएनयू के छात्रों और अध्यापकों का सम्बन्ध बुनियादी तौर पर मजबूत था। अध्यापक छात्रों को अपने परिवार का हिस्सा मानते थे। विद्यार्थियों के साथ हर पहलू पर विचार-विमर्श किया जाता था। यहाँ तक की कभी-कभी क्लास अध्यापकों के घर पर होती थी, जिसके समाप्त होने की कोई समय-सीमा निर्धारित नहीं थी। हमारी ट्यूटोरियल की क्लास छः घंटे से अधिक समय तक चलती थी। उस समय केवल नम्बर पाने के उद्देश्य से पढ़ाई नहीं की जाती थी। शिक्षा का उद्देश्य समाज में बदलाव और जीवन को बेहतर बनाना होता था। मेरे शोध निर्देशक के अवकाश प्राप्त कर लेने के बाद, मैं उनसे मिलने मद्रास जाया करती थी। उन्हें अपने शोध-प्रबंध के अध्याय समय-समय पर दिखाती थी और उचित मार्गदर्शन लेती थी। पहले मैं अकेले जाती थी लेकिन शादी के बाद पति और बेटे के साथ जाने लगी। इस तरह से हमारे सम्बन्ध प्रौढ़ थे। हमारे मन में यह भावना थी कि जिस अध्यापक के साथ शोधकार्य प्रारंभ किया है, तो उनके साथ ही शोध कार्य समाप्त करना है। इस तरह गुरु और शिष्य के बीच वात्सल्यमय तथा गरिमामय सम्बन्ध थे।

आज के समय में इतिहास की अनिवार्यता को किस दृष्टि से देखती है ?

इतिहास एक ऐसा विषय है, जो सीधे-सीधे हमारे जीवन से जुड़ा हुआ है, जिससे हमारा 'भूत, वर्तमान और भविष्य' तीनों क्षेत्र प्रभावित होते हैं। इतिहास की शिक्षा स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय आदि स्तरों पर दी जाती है, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि इतिहास आम व्यक्ति के जीवन से बाहर है। इतिहास जितना एक विद्यार्थी के लिए जरूरी है, उससे कहीं ज्यादा एक व्यक्ति या नागरिक के लिए भी जरूरी है। यहाँ उदाहरणस्वरूप मैं यह बताना चाहूँगी कि मेरे शोध-प्रबंध का विषय देश के विभाजन से जुड़ा था, जिस पर मेरी पकड़ का होना लाजमी थी। विभाजन की यह त्रासदी आज से लगभग 65-66 साल पहले घटित हुई थी, जिसके बीज, तथ्य अर्थात् कारण आज भी समाज में मौजूद हैं। ये कारण आज भी समाज को दूषित कर रहे हैं। इनसे देश, समाज, परिवार और व्यक्ति सभी एक समान रूप से पीड़ित हैं। इस आधार पर एक आम व्यक्ति के लिए भी विभाजन के तत्वों को समझना आवश्यक है क्योंकि आज भी यही अराजकतावादी और साम्प्रदायिकतावादी ताकतें समाज और देश को बर्बाद कर रही हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण आपके सामने उपस्थित है। भारत में घटित 1984 के दंगे, 1992 में बाबरी मस्जिद विध्वंस, 2002 में गुजरात दंगे आदि अन्य साम्प्रदायिकतावादी गतिविधियाँ इस प्ररिपेक्ष्य में देखी जा सकती हैं। आम नागरिक के पास इन विषयों पर कहने-सुनने के लिए काफी कुछ है। इतिहास को जाने बिना इन अनुचित गतिविधियों को रोकना सम्भव नहीं है। आज भी देश में हिंदू-मुसलिम साम्प्रदायिकतावादी ताकतें अपना परचम लहरा रही हैं जिनमें हिंदू महासभा और आर.आर.एस. 1947 में भी सक्रिय थी और आज भी सक्रिय है। राष्ट्र, समाज और परिवार को इन ताकतों से बचाने के लिए इतिहास की जानकारी होना अनिवार्य है।

इतिहास पढ़ना क्यों आवश्यक है ?

इतिहास पढ़ना इसलिए आवश्यक है, क्योंकि इससे हमें मानव के उद्भव और विकास प्रक्रिया के बारे में पता चलता है तथा राष्ट्र, समाज और परिवार की संकल्पना और अवधारणा स्पष्ट होती है। इन संस्थाओं का निर्माण किस तरह से होता है। हम लोग किस तरह एक दूसरे से जुड़े होते हैं तथा कोई विचारधारा किस तरह से पैदा होती है, किस तरह से उसका प्रचार और प्रसार होता है। उसके पनपने वाले तथ्यों को कैसे होते हैं, उन्हें कैसे समझा जा सकता है, इन समस्त तथ्यों की जानकारी इतिहास से मिलती है। उदाहरण के लिए फौजीवादी, नाजीवादी, साम्यवादी, अराजकतावादी, साम्प्रदायिकतावादी, जातिवाद और बाजारवादी आदि विचारधाराओं का उद्भव कैसे होता है ? ये विचारधाराएँ व्यक्ति को अपने जाल में कैसे फँसाती हैं ? उसके बौद्धिक चिंतन की प्रक्रिया को कैसे अवरुद्ध करती हैं ? इस संदर्भ में इन समस्त विचारधाराओं को देखा जा सकता है। परिणामस्वरूप दलित, आदिवासी और स्त्रीवादी विचारधाराओं का उदय हुआ। ये विचारधाराएँ समाज और व्यक्ति को जागरूक करती हैं तथा हमारा परिचय यथार्थ से करवाती हैं। इसके साथ ही ये विचारधाराएँ राष्ट्र और समाज को नकारात्मक विचारधाराओं से पनपने वाली समस्याओं से मुक्ति दिलाती हैं। आज भी कुछ नकारात्मक विचारधाराएँ समाज पर हावी हैं, जिसके अंतर्गत हम बाजारवादी ताकतों को देख सकते हैं। किस तरह से इन नकारात्मक विचारधाराओं ने व्यक्ति को अपने मोह पाश में फँसाया हुआ है, जिसके परिणामस्वरूप प्रत्येक तथ्य और वस्तु (अर्थात् राष्ट्र और समाज) इनके माध्यम से संचालित हो रहा है। आज हमारे युवा वर्ग में आशावादी और सुधारवादी दृष्टिकोण नज़र नहीं आता है। उसके जीवन और विचार को गति इसी विचार से मिल रही है। वह समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व और कर्तव्य से विमुख होता जा रहा है। पहले के विद्यार्थियों में विदेश जाने की होड़ नहीं थी। उन्हें लगता था कि जब यही पर उन्हें सर्वश्रेष्ठ अध्यापक पढ़ाते हैं तथा उनका उचित मार्गदर्शन मिलता है, तो इसके लिए विदेश जाने की क्या आवश्यकता है ? लेकिन अब स्थितियाँ ऐसी नहीं हैं।

यह सवाल थोड़ा हटकर है। पर मैं जानना चाहूँगी कि क्या इतिहास के अध्ययन में हिंदी साहित्य आप की कोई मदद करता है ?

मैंने विभाजन पर काम किया। इस विषय पर कार्य करना सरल नहीं था। यह विषय अपने आप में बहुत विस्तृत है, जिसे समझने के लिए आपको अन्य शैक्षणिक उपकरणों और संसाधनों की सहायता लेनी पड़ती है। मैंने इस विषय को समझने के लिए उस समय विभाजन पर लिखे गए तमाम उपन्यासों को पढ़ा। इस तरह से मैंने अपनी समझ को विकसित किया। इससे मुझे विषय की गहराई को जानने में मदद मिली। मैंने यशपाल का 'झूठा-सच', मंटो की कहानियाँ, भीष्म साहनी का 'तमस', कश्तुलेन हैदर का 'आग का दरिया' और जोगिन्दर पॉल का

‘खवाबरो’ आदि को पढ़ा। इस तरह से इतिहास पढ़ने और पढ़ाने में हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य से सहायता मिलती है। उदाहरण के लिए, जब हम रूसी इतिहास पढ़ते हैं तो हमें उनके इतिहास को समझने के लिए मैक्सिम गोर्की और तालस्तोय को पढ़ना लाज़मी है, क्योंकि वहाँ के सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक और आर्थिक दशा को केवल तथ्यों और साक्ष्यों के आधार पर उन्नत तरीके से नहीं समझा जा सकता। इसके लिए रूसी साहित्य को पढ़ना और समझना आवश्यक है। हमारे इतिहास विभाग में प्रेमचंद के उपन्यासों पर ऐतिहासिक दृष्टिकोण से शोध कार्य हो रहा है। जेएनयू में अंतर्विषयक पाठ्यक्रम के रूप में इतिहास की शिक्षा दी जाती है इसलिए आप किस अनुशासन से आते हैं, यह मायने नहीं रखता है। इसके बजाय आपकी ‘सोच और विचार’ राष्ट्र और समाज के हित में हो यह ज़्यादा मायने रखता है इसलिए हमारी कोशिश इतिहास को समस्त दृष्टिकोण से पढ़ाने की रहती है। जैसा कि मैंने पहले बताया कि मैं अर्थशास्त्र की विद्यार्थी थी फिर बाद में इतिहास पढ़ने के लिए आयी। मेरे पति साहित्य के प्रोफेसर हैं। इस तरह से मैं स्वयं को पूरी तरह से साहित्य के निकट पाती हूँ।

क्या हिंदी भाषा के माध्यम से इतिहास की शिक्षा दी जा सकती है ?

हाँ, बिल्कुल दी जा सकती है। वैसे कई विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में इतिहास की शिक्षा हिंदी भाषा के माध्यम से दी जाती है। मैं यहाँ पर यह कहना चाहूँगी कि भाषा केवल सम्प्रेषण का माध्यम होती है, इसके लिए किस भाषा का प्रयोग किया जाना चाहिए। यह प्रयोगकर्ता पर निर्भर करता है। केवल आपकी बात और संदेश विद्यार्थियों तक सम्प्रेषित होना आवश्यक है। जेएनयू में इतिहास की शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी भाषा है, लेकिन किसी विद्यार्थी के पास अंग्रेज़ी का पर्याप्त ज्ञान नहीं होता है, तो उसे ट्यूटोरियल क्लास में हिंदी या दूसरी भाषा के माध्यम से तथ्यों को समझाया जाता है। उसकी भाषिक कमी को दूर करने का प्रयास किया जाता है। ऐसा बिल्कुल नहीं है कि हिंदी भाषा के माध्यम से इतिहास की शिक्षा नहीं दी जा सकती है। हाँ, पुस्तकों की कमी ज़रूर है।

आजकल विश्वविद्यालय में इतिहास का जो पठन-पाठन हो रहा है, उसको लेकर आपकी राय क्या है ?

विश्वविद्यालय स्तर पर इतिहास का जो पाठ्यक्रम पढ़ाया जा रहा है, वह उचित ही है, लेकिन समय के अनुसार उसमें बदलाव की गुंजाइश है। जैसे कि अब हमें अपने इतिहास के पाठ्यक्रम में मौखिक इतिहास को स्थान देना चाहिए, जिसे अब तक लिखा नहीं गया लेकिन वह अपने अस्तित्व के साथ आज भी मौजूद है। उसे इतिहास में दर्ज करना आवश्यक है। इसकी शुरुआत प्रोफेसर विपिन चंद्र के द्वारा 1984 में हुई थी। मैंने तीन

साल इस पर कार्य किया। हमारे विभाग के कई लोग इस प्रोजेक्ट के साथ जुड़े थे, जिनमें भगवान जोश, मृदुला मुखर्जी और आदित्य मुखर्जी का नाम उल्लेखनीय है। इन लोगों ने पंजाब से लेकर केरल तक 1500 स्वतंत्रता सेनानियों, वामपंथी नेता, किसान आंदोलन और ट्रेड यूनियन नेताओं का साक्षात्कार लिया तथा उसे लिपिबद्ध कर इतिहास लेखन में शामिल किया। कई ऐसे समूह और वर्ग हैं, जिनका इतिहास मौखिक रूप में उपलब्ध है। उन्होंने उसे लिपिबद्ध नहीं किया है, जिसे लिपिबद्ध करना ज़रूरी था ताकि इतिहास की दृष्टि से यह मूल्यवान जानकारी लुप्त न हो जाये। इस तरह की मूल्यवान सामग्री को वैज्ञानिक साक्ष्यों के आधार पर तौलकर इतिहास में शामिल किया जाता है। इसके अंतर्गत आप दलित, आदिवासी और स्त्री साहित्य को देख सकते हैं। इस दिशा में अब लगातार कार्य हो रहा है। यह मौखिक इतिहास का उत्कृष्ट उदाहरण है। हमारे विभाग का एक शोधार्थी ‘1950 के बाद के लदाख’ के मौखिक इतिहास पर कार्य कर रहा है। ऐतिहासिक कार्टूनों पर भी अब शोध कार्य हो रहा है। मौखिक इतिहास को विश्वव्यापी तौर पर देखें तो पायेंगे कि आज इसे इतिहास का दर्जा दिया जा रहा है।

भविष्य में इतिहास के पाठ्यक्रम का स्वरूप कैसा होना चाहिए ?

पहले इतिहास के पाठ्यक्रम में प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक इतिहास की शिक्षा दी जाती है, जिसके लिए इतिहास के परम्परागत तरीकों के माध्यम से पठन-पाठन होता था, लेकिन अब इसमें बदलाव आया है। जेएनयू में समकालीन और तत्कालिक इतिहास की शिक्षा दी जाती है, जो द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विकसित हुई थी। इस तरह से इतिहास अब राजा-महाराजा, ईस्वी और सन् तक सीमित नहीं रह गया है। शोध के विषय और उसकी प्रविधियों में अभूतपूर्व बदलाव आया है। जहाँ तक हम स्वतंत्रता आंदोलन की बात करते हैं, तो अब इस विषय को लेकर जमीनी स्तर पर शोध कार्य हो रहा है। मौखिक इतिहास, समकालीन इतिहास और आम जनजीवन से सम्बन्धित इतिहास को इतिहास के पाठ्यक्रम में शामिल करने की आवश्यकता है। इतिहास के पाठ्यक्रम में 10-20 साल के अंतराल में फेरबदल करना चाहिए। इससे पाठ्यक्रम में नवीनता और रोचकता आती है। युवा वर्ग और शोधार्थी स्वयं को पाठ्यक्रम से जुड़ा हुआ महसूस करता है। उसकी जिज्ञासा और रुचि विषय के प्रति बढ़ती है। इसके अलावा युवावर्ग, जो शोध कार्य कर रहे हैं। उसे भी पाठ्यक्रम में शामिल किया जा सकता है। इससे वर्तमान और प्राचीन के बीच तालमेल बना रहता है। इस तरह से एक नवीन विचारधारा उजागर हो सकती है। हमारे विभाग का माहौल पूरी तरह से लोकतांत्रिक है। युवाओं को नवीन विषयों पर शोध कार्य करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। समस्त निर्णय लोकतांत्रिक तरीके से लिया जाता है।

विज्ञान में मौलिक चिंतन की ज़रूरत है

प्रमोद यादव



प्रमोद यादव जनेवि के जीवन विज्ञान संस्थान में प्रोफेसर हैं। इस बार अध्ययन कक्ष में प्रस्तुत है, उनके विचार।

वैज्ञानिक शोध दो रूपों में होता है। एक तो, मौलिक चिंतन और मौलिक प्रश्न से संबंधित है। मौलिक का मतलब विज्ञान में जो कुछ नई खोज करनी होती है इसके लिये भौतिक या प्राकृतिक मौलिक चिंतन की ज़रूरत होती है। दूसरा होता है, मौजूद धारणाओं को लागू करने का। हम अपने जीवन में वैज्ञानिक चीजों का इस्तेमाल कैसे कर सकते हैं। इन्हें दूसरे शब्दों में बेसिक एण्ड एप्लाइड कहते हैं, तो ये इन विधाओं में बंट जाती है। इन दोनों का अपना-अपना महत्व है, कोई एक-दूसरे से बेहतर या कम नहीं है। जब हम यहां आये, तो हमारे मन में एक प्रश्न था, जो मेरा अपना प्रश्न तो था ही, एक वृहत्तर समुदाय का प्रश्न भी था कि जब जैविक तंत्र नहीं थे तो किस तरह के अणु ऐसा काम करते होंगे, जो जैविक तंत्रों की तरह होते होंगे। जब जैविक तंत्रों का संगठन नहीं था, जब कोई कोशिकाएं नहीं थी, तब अणु क्या काम करते थे। ये माना जाता है कि जैविक तंत्रों के दो अनिवार्य गुण होते हैं। एक तो उनमें सूचनाएँ होनी चाहिए। उन्हें अपनी तरह का ही बनाना है। उनके पास एक स्क्रिप्ट होनी चाहिए कि कैसे बनाये? दूसरा होता है – पदार्थ रूपांतरण (मटेरियल ट्रांजेक्शन का) अर्थात् अपने पर्यावरण से चीजों को लेकर अपनी तरह का बना देना या ढाल देना। इसमें जो पदार्थ रूपांतरण होता है, उसकी रासायनिक प्रक्रियाओं में एन्जाइमेटिक या किण्व गतिविधियों के केन्द्र होते हैं। जैसे रासायनिक प्रक्रियाओं से अमोनिया बनाना हो, तो उसके लिये नाइट्रोजन और हाईड्रोजन को 200 डिग्री पर गर्म करके रखते हैं, लेकिन जैविक तंत्रों में यही चीज किण्व अभिकरणों का इस्तेमाल करके करीब-करीब सामान्य तापमान पर पूरी की जाती है। इस तरह के अणु होना भी ज़रूरी है। सूचना की एक व्यवस्था होनी चाहिए और एक व्यवस्था होनी चाहिए पदार्थ रूपांतरण को केटेलाइज करके क्योंकि जैविक तंत्रों का तापमान इतना घटा-बढ़ा नहीं सकते कि 200 डिग्री कर दीजिए या शून्य से नीचे ले जाइए। जैसे जौ एक्सट्रीमोफाइल कहे जाते हैं। वे 100-100 डिग्री तक जीवित रहते हैं, लेकिन ज्यादातर जैविक तंत्र है केवल 10-50 डिग्री तक ही जैव क्रियाएं करते हैं। इसमें सबसे ज्यादा बायोमास होते हैं। ये गरम पर्यावरण में होते हैं और उसमें ये तापमान रेंज होता है। एक यह परिकल्पना है कि शायद आरएनए मालेक्यूल, थोड़ा-सा इसे मैं पोपुलराइज नहीं कर पाऊंगा, एक तरह के अणु हैं, राइबोन्यूक्लिक एसिड, जिसमें कि सूचना रखने की क्षमता होती है और जो ऐसी संरचना अपने में पैदा कर सकते हैं, जिसे कि कई तरह की केटालिटीक

मोलेक्यूल जैसे पदार्थ रूपांतरण के अभिकारक बन सकते हैं। एक आरएनए वर्ल्ड परिकल्पना/अभिकारक है, जिसमें यह कहा जाता है कि सेल्स के ऑर्गेनाइज होने के पहले आरएनए डोमिनेन्ट मोलेक्यूल था। आज की तारीख में सेन्ट्रल जेनेटिक मटेरियल में डीएनए उसकी जगह है। शायद डीएनए के पहले ही आरएनए बना और आरएनए ने अपना काम शुरू किया और बहुत से जैविक तत्त्वों को अपनी क्रियाओं में संजोया तो आगे चलकर कालांतर में यह हुआ कि आरएनए से डीएनए बना। आरएनए अभी भी जैव तंत्रों का बहुत महत्वपूर्ण अवयव है, लेकिन अभी यह केन्द्रीय जेनेटिक मटेरियल अर्थात् अनुवांशिकी पदार्थ नहीं है। वह अब डीएनए हो गया है।

इस पर हम लोगों ने काम किया है, राइबोजाइम्स बनाया। इसका एप्लाइड पहलू भी निकला कि इसकी मदद से किसी दूसरे राइबोन्यूक्लिक एसिड को एक खास जगह पर काट सकते हैं। जब हम बीमार हो जाते हैं, तो उसमें कुछ अणु बदलते हैं। जीन्स का एक्सप्रेशन होना शुरू होता है और कुछ का जो होना चाहिये, वह नहीं होता है। अगर किसी अवांछित जीन का एक्सप्रेशन हो रहा है, तो उसे हम राइबोजाइम की मदद से काट सकते हैं। ऐसे ही ट्युमर नेक्रासिस फैक्टर आता है, जो बहुत से डिसऑर्डर जैसे – मधुमेह है, गठिया है, इसमें उसका एक्सप्रेशन होता है। हम लोगों ने उस प्रक्रिया को लक्षित करने वाला राइबोजाइम बनाया और एक्सपेरिमेंटल मॉडल में दिखाया है कि इसके एडमिनिस्ट्रेशन करने से, इसका ट्रीटमेंट करने से गठिया की बढ़त धीमी पड़ जाती है। इसके बाद हमने बहुत से और आरएनए चुने जो कि हमारे दिए हुए अणुओं को बांधते थे, जैसे ग्लूटाथायोन एक मोलेक्यूल होता है। ग्लूटाथायोन में शरीर की एक एंटी-ऑक्सीडेंट व्यवस्था होती है। इसकी आवश्यकता होती है, क्योंकि शरीर में बहुत से हानिकारक रियेक्टिव ऑक्सीजन स्पीसीज होते हैं, उनको निश्क्रिय करने के लिये एंटी ऑक्सीडेंट व्यवस्था का होना ज़रूरी है। ट्युमरसेल्स में ग्लूटाथायोन का होना आवश्यक है क्योंकि वह बहुत तेज रफ्तार से बढ़ते हैं। अगर हम ट्युमरसेल्स से ग्लूटाथायोन को हटाते हैं या उसकी उपलब्धता को सीमित करते हैं, तो क्या ट्युमर सेल्स मर सकते हैं, ये एक प्रश्न है। हम लोगों ने यह दिखाया है कि हम ग्लूटाथायोन को बांधने वाला आरएनए अगर कैंसर सेल्स में देते हैं, उसमें डेथ रेसपोन्स आता है। इसका मतलब यह नहीं है कि साधारण सेल्स में वो रेस्पॉन्स नहीं आयेगा। साधारण सेल्स में भी अगर आप ग्लूटाथायोन बर्निंग

आरएनए डालेंगे, तो साधारण सेल्स भी मरेंगी, लेकिन अगर हम चयनित सेल्स में डालेंगे तो क्या होगा ? ऐसा किया जा सकता है। ऐसी डिलेवरी हैं कि आप जिस सेल्स को चाहें उनको ही डिलीवर करें, इससे क्या होगा कि आप कैंसर सेल को मार देंगे। ये भी एक तरीका हो सकता है, आगे चल कर, कैंसर कन्ट्रोल करने का।

इसी तरह और इलाज में भी होता है। उदाहरण के लिये, क्रोमोसोम, जिसको गुणसूत्र कहते हैं, जो आनुवंशिकी से जोड़ते हैं, के अंत में खुली सिक्वेन्स होती हैं, जो सेल विभाजन के साथ-साथ घटती रहती हैं। ऐसे सेल को तेजी से विभाजित करने के लिए, मल्टीप्लाई करने के लिए टिलोमरेज एक ऐन्जाइम होता है, उसको वह रिप्रेजेंट कर देती है, उसके चलते उसके क्रोमोसोम के छोर बने रहते हैं। यह बहुत जरूरी है कि हर डिवाइडिंग सेल के लिए, हमारी ऐसी सेल के लिए जिसको लगातार विभाजित करना है, मल्टीप्लाई करना है, उसके आखिर के सिक्वेन्स बनी रहे। नहीं, तो वह सेल द्वारा यह डीएनए डैमेज के तौर पर देखा जाता है और वहां पर दूसरी तरह की चीजें होने लगती हैं, उसका रिपेयर होने लगेगा या दूसरे गुणसूत्रों में उसका मिश्रण होने लगेगा, तो हम लोगों ने इसे लक्षित करते हुए ही राइबोजाइम बनाया है और आरएनए बनाया है। यही लॉग टर्म लक्ष्य है कि कैंसर सेल में अगर हम उसकी डिलेवरी कर सकते हैं, तो शायद वह कैंसर के खिलाफ एक युक्ति होगी, जिससे कैंसर सेल्स को मारा जा सके। ऐसी और भी कई चीजें हैं, जैसे कैंसर की सेल के तल पर कुछ तरह के अणु होते हैं, तो उनको रिकोगनाइज करने वाले अणु हम बनाते हैं। उससे क्या होगा कि इस अणु के साथ जिसको भी हम फ्यूज करेंगे तो वो खासतौर से कैंसर सेल को डिलीवर होगा, टारगेटेड डिलेवरी कैंसर में होगी। जैसे कोई जहर हम केवल कैंसर सेल को देना चाहते हैं तो उस जहर को कोड

करने वाली सिक्वेन्स को इस तरह की पद्धति से फ्यूज कर दें, तो वो कैंसर सेल को डिलीवर होगा और कैंसर मर जाएगा। इससे कैंसर रहित सेल्स बची रहेगी। ये भी एक एप्रोच है, जो लोग कर रहे हैं। ऐसा करते करते उधर पहले हमारी प्रयोगशाला में कुछ वैक्सीन रिलेटेड काम होता था, अब तो नहीं हो रहा है, इसलिए उसकी चर्चा नहीं कर रहा हूं।

इस विषय पर पाठ्य सामग्री आजकल इन्टरनेट पर कुछ चीजें होती हैं जैसे विकिपीडिया में, लेकिन लोकप्रिय सामग्री हो और भरोसेमंद भी हो यह थोड़ा मुश्किल मामला है। क्योंकि कोई न कोई इसको तैयार करता है तभी लोकप्रिय सामग्री बन पाती है। जैसे मैं ही इस दौरान बहुत से तकनीकी शब्द इस्तेमाल कर गया हूँ, हमें थोड़ा सा उसके समानार्थी शब्द इस्तेमाल करने चाहिए।

वीकी में बहुत कुछ मिल जाता है लेकिन सावधानी से पढ़ना चाहिए, क्योंकि वहाँ कच्ची सामग्री भी मिलती है। एक तो यह स्रोत हो सकता है। दूसरा सेन्ट्रल डेटाबेस है – हमारा, एनआईएच जो अमेरिकन नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ हेल्थ, ये एक अच्छा स्रोत है। नेशनल सेंटर फॉर बायोटेक्नीकल इंफॉर्मेशन भी अच्छा स्रोत है, लेकिन वो आम पाठक के लिए नहीं होता। एक जिज्ञासु के लिए कुछ नहीं है। शायद ऐसी साइट्स कम हैं। कैंसर की किताबें सरल भाषा में नहीं हैं या हो सकता है, हमें मालूम ही न हों। शोध पत्र प्रकाशित होते हैं और समीक्षाएँ भी। ये मददगार हो सकते हैं। इसमें दो भेद होते हैं, एक तो समीक्षा और विश्लेषण और दूसरा नया डाटा रिपोर्ट करते हैं। ये तो बात वहीं की वहीं रह जाती है, वह सहज भाषा में नहीं आ पाते हैं। रिव्यू या कुछ आर्टिकल हैं, जो बायो एसेस (ESS) जर्नल में मिल जाएंगे। इस पत्रिका में शिक्षण के लिहाज से लेख लिखे जाते हैं। इस संदर्भ में TIBTECH (ट्रेंड्स इन बायोटेक्नोलॉजी) भी देखी जा सकती है।

विदेशी भाषा के माध्यम ने जिसके जरिए कि भारत में उच्च शिक्षा दी जाती है हमारे राष्ट्र को हद से ज्यादा बौद्धिक और नैतिक आघात पहुंचाया है। जिन विषयों को सीखने में मुझे चार साल सल गये अगर अंग्रेजी के बजाय गुजराती में मैंने पढ़ा होता तो उतना मैंने एक ही साल में आसानी से सीख लिया होता। इस अंग्रेजी माध्यम ने मेरे और मेरे कुटुम्ब के बीच, जो कि अंग्रेजी स्कूलों में नहीं पढ़े थे, एक अगम्य खाई कर दी है।

—महात्मा गांधी

इतिहास अपने समय को जानने का एक तरीका है

दीपक कुमार



पाठ्यक्रम संवाद जेएनयू परिसर की तरफ से शुरू किया गया एक संवाद है जिसमें महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में पढ़ाये जा रहे पाठ्यक्रमों पर विचार किया जाएगा। इस बार इतिहास के पाठ्यक्रम को लेकर प्रस्तुत है इतिहासकार प्रो. दीपक कुमार, प्रो. रजत दत्ता और प्रो. सलिल मिश्र के विचार।

इतिहास अपने आपको, अपने समाज को, अपने सदस्यों को समझने का एक जरिया है, एक तरीका है। आप जानते हैं कि पूरे प्राणी समाज में मनुष्य को खास किस्म की क्षमता मिली कि वह एक लंबी स्मृति का मालिक है। वह सोच सकता है, समझ सकता है, भविष्य नहीं देख सकता, लेकिन भूत का आकलन जरूर कर सकता है। इस आकलन की प्रक्रिया में इतिहास एक महत्वपूर्ण विधा है और यह हर सोच, हर विचार और समाज के हर अंग तक परिलक्षित होता है। व्यक्ति का व्यक्तिगत इतिहास, पारिवारिक इतिहास, सामाजिक इतिहास, सांस्कृतिक इतिहास और आर्थिक इतिहास भी है। राष्ट्र को अगर ले तो राष्ट्र का भी अपना एक इतिहास है। समुदाय का भी इतिहास है। तो इस तरह यह एक ऐसी विधा है, जिससे किसी भी समाज का कोई भी अंग अछूता नहीं है। आप इसे मानिये या न मानिये यह आप के जीन में चल रहा है। यह आप के भीतर तक, बहुत भीतर-गहराई तक चल रहा है। इसी वजह से इसकी सही समझ, सही आकलन और सही उपयोग हो सकता है। यहां पर सही शब्द बड़ा भारी है, क्योंकि सही क्या है, क्या सही नहीं है, यह तय करना मुश्किल है। मतैक्य हो सकता है, तो सही इतिहास को समझने के कई तरीके हैं। इस पर विचार होते हैं, और बहुत बातचीत के बाद कुछ चीजें ऐसी होती हैं जिस को हम कहते हैं कि ये ऐतिहासिक धाराएं हैं। ये इतिहास है।

दूसरी जो महत्वपूर्ण बात मैं कहना चाहूंगा जोकि हर पीढ़ी को इतिहास को नये दृष्टिकोण से देखना चाहिए। इतिहास एक बार नहीं लिखा जा सकता है। कोई भी इतिहास फाइनल नहीं कहा जा सकता है। अंतिम शब्द नहीं कहा जा सकता है। दो और दो चार नहीं। इसीलिए हर पीढ़ी को अपने ढंग से कोशिश करनी चाहिए कि इतिहास का पुर्ननिरीक्षण करें। उसे आप अपने से अलग नहीं कर सकते। चाहे कोई भी विधा हो – साहित्य की हो, विज्ञान की हो, समाजशास्त्र की हो, विधि विज्ञान की हो। आप को अपनी शुरुआत जो है ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से ही करनी होती है। किसी भी दिन अगर आप बैंक में जाए तो खाता खोलने के पहले, कल के खाते को देखते हैं कि कहां पर वो खाता बंद हुआ है और फिर जो कल का खाता है वह इतिहास है और उस खाते को आप अनदेखा नहीं कर सकते। उसी पर जोड़-घटाव करते हैं आप आगे और। चूंकि भविष्य आप के हाथ में नहीं है। आप भविष्य का आकलन या भविष्य के प्रति कोई तैयारी आखिर किस के आधार पर करते हैं। इसमें इतिहास का महत्व है। वही इतिहास जो है, वह हमारे अनुभवों की पूंजी है। इतिहास पूंजी है और उसी के ऊपर आप आज को

संभलने की कोशिश करेंगे और अपने आनेवाले कल के बारे में छोटी-बड़ी कुछ तौर पर रूपरेखा बना सकते हैं, तो ये तो है-इतिहास। इसी वजह से इतिहास की जो सोच जितनी गहरी है, उतना ही इतिहास का सही सदुपयोग नहीं करते हैं। इतिहास के कुछ पन्ने ऐसे हो सकते हैं जो एटम बम से भी ज्यादा घातक हो सकते हैं। क्योंकि वह आप की नसों के अंदर तक बसता है।

आप देख रहे हैं कि कैसे इतिहास का दुरुपयोग धार्मिक, राजनीतिक कारणों से होता है। जो किसी भी बम से ज्यादा घातक है। इतिहास की कई चीजें और धाराएं मनुष्य को आम-आदमी को विभक्त कर देती हैं। समाज का विभक्तिकरण छोड़िये, आप का आपसी, आप के अंदर भी विभक्तिकरण होता है, बिखराव होता है और कुछ ऐसे पन्ने हैं, जो महत्वपूर्ण हैं। ये आप पर निर्भर करता है आप जिन पन्नों को पढ़ना चाहेंगे अथवा नहीं चाहेंगे। हर पीढ़ी को ये निर्णय अपने आप पर करना है। जोर-जबरदस्ती नहीं है, वो तो आप निर्णय करेंगे कि कैसे किन पन्नों को समेटा जाए, देखा जाए और उन से कुछ सीखा जाए, न सीखे कोई बात नहीं। इतिहासकार बहुत प्रसन्न हैं। यह आपकी मर्जी है, यह आप की पसंद है। इतिहास की यह एक विशेषता है कि यह बहुत किस्म की पसंद देता है, इसीलिए इसमें मतैक्य बहुत हैं। आर्थिक दर्शन की तरह इस में मतैक्य बहुत है और इतिहास एक किस्म से दर्शन भी है। दर्शन इतिहास से जुड़ा हुआ भी है। इतिहास, दर्शन, साहित्य सारी विधाएं आपस में जुड़ी हुई हैं और यह देखने वालों पर निर्भर करता है कि वो बगैर चश्मे के देखना चाहता है या अगर देखना चाहते हैं चश्मों के साथ, तो किस तरह के चश्मों के साथ देखना चाहते हैं। चश्मों भी बहुत तरह के हैं। वाद-विवाद की प्रक्रिया भी बहुत तरह की है। तो इतिहास को नकारने का कोई सवाल ही नहीं है। कोई भी इंसान इसे देख सकता है और अब नये रूप आ रहे हैं इतिहास के, जिसमें सिर्फ राजनीतिक इतिहास महत्वपूर्ण नहीं हैं। समाज की हर तरह की छोटी धाराओं का इतिहास होना चाहिए। खाली मुख्यधारा जरूरी नहीं है। छोटी-छोटी जो धाराएं थी छोटी-छोटी जो बातें थी जो इतिहास में मूलधारा से प्रभावित हैं। दो दशकों से इस पर मैं बात कर रहा हूँ कि इन का भी आकलन होना चाहिए।

वैज्ञानिक इतिहास तभी बनेगा जब विज्ञान का इतिहास, तकनीक का इतिहास के तौर पर लिखा जायेगा। तकनीक का इतिहास अभी विभाजन का इतिहास नहीं है, वह वर्ग भेद नहीं करता है। तो उस पर हम ने बात की। साईंस टेक्नालॉजी

पर्यावरण, पर तो बहुत लोग सोच-विचार कर रहे हैं। अब मैं कल जा रहा हूँ मानचेस्टर, वहाँ एक चार साल में एक बार बड़ी संगोष्ठी होती है हमारी हिस्ट्री ऑफ साईंस ऐंड टेक्नालॉजी की। भारत से तकरीबन पंद्रह लोग जा रहे हैं। लोग आते-जाते हैं। विचार गोष्ठियाँ होती रहती हैं। भारत में भी सोच-विचार धीरे-धीरे हो रहा है।

हम दुर्भाग्य से राजनीतिक इतिहास और विभाजन के इतिहास पर ज़्यादा जोर देते हैं। क्योंकि उससे नाम ज़्यादा मिलता है। अब बिचारे बाबर को भी पता नहीं होगा कि पांच सौ साल बाद उस का नाम घर-घर में लिया जायेगा। एक मामूली मस्जिद बनवाने के बारे में, तो उस में चूँकि वह बम की तरह प्रभावशाली पन्ना था। इस का इस्तेमाल हुआ। उस समय प्लेग और दूसरे कारणों से कितने लोग मरे? क्या हुआ? उस में किसी को दिलचस्पी नहीं। ताजमहल को हम बराबर दिखाते हैं कि यह हमारी बड़ी उत्कृष्ट कला का नमूना है। उसका नमूना तो है ही, लेकिन ताजमहल किसी संतुलित संस्कृति का प्रतीक मुझे नहीं लगता है। हमारे यहाँ बाबर माना गया। हमने भक्ति संप्रदाय की प्रेरणा से पिछले आठ सौ साल से भक्ति ही कर रहे हैं। हम ने वो नहीं किया जो पश्चिमी देश कर रहे हैं। उन्होंने गेलिलीयों, लोनासी, न्यूटन और कई विद्वान पैदा किये। चैतन्य, नानक, कबीर से लेकर बाबा साहब तक बहुत ही कुशल हमारे यहाँ सोशल इंजीनियरिंग बहुत हुए। रामानंद से लेकर मायावती तक। रियलिंग इंजीनियरिंग गायब हो गई। विश्वकर्मा की पूजा नहीं होती हमारे यहाँ। ऐसी बहुत तरह की चीजें हुईं जिसे नयी दृष्टि से देखने की जरूरत है। हमारे बीच जो विसंगतियाँ भी बहुत आयीं। इस के अंतर्गत विसंगतियों और मूल्यों के बीच तादाम्य जो मूल्यों पर काम करते थे, उन्हें गांव के बाहर रखा-फसाया गया। हमारा है वह तरह-तरह की चीजों में फंसा रखे थे। सोच-विचार में विसंगति आयी।

तो इतिहास को नयी दृष्टि से देखने की जरूरत है। इस में दो राय नहीं। आज सोशल हिस्ट्री लिखी जाती है। अब आप बताइये सोशल हिस्ट्री का माने खाली ब्रह्म समाज, आर्य समाज और आंबेडकर हैं। ये मोबाईल जो आप लेकर घूम रहे हैं, इसका सामाजिक इतिहास या परिप्रेक्ष्य है या नहीं? ये कोई सामाजिक वस्तु है या नहीं। इसका भी इतिहास होगा। इसका क्या प्रभाव है, आप देखें ज़रा। आप स्वयं भी इसे लेकर घूम रहे हो, तो फोन का भी सामाजिक इतिहास होना चाहिए। तकनीक का सामाजिक इतिहास होना चाहिए। आप के शरीर में तरह-तरह की व्याधियाँ हैं वो भी सामाजिक कारणों से होती हैं उस का सामाजिक इतिहास होना चाहिए। अब कमजोर, दुबले लोग-बच्चे मर रहे हैं, इसका भी तो सामाजिक इतिहास होना चाहिए। इन सभी की हमने उपेक्षा की है। अब वक्त आ गया है कि इतिहास को इसके परिप्रेक्ष्य में देखा जाये।

इतिहास के स्रोतों का सवाल थोड़ा मुश्किल सवाल है। थोड़ी दिक्कत होती है स्रोतों को लेकर। लेकिन कोशिश यह

होनी चाहिए जहाँ तक हो सके प्राथमिक स्रोतों को लिया जाये, जिसे कहते हैं हॉर्सेस माउथ जिसे घोड़े के मुँह से सीधा निकले तो बहुत अच्छा है। उसके बहुत सारे स्रोत हैं। पुरालेखिक हैं, उस समय के लेखन, कथन के ये तो मिले-जुले हैं। स्रोतों में कोई कमी नहीं है और यह शोधकर्ता के ऊपर निर्भर करता है कि वो किस तरह के स्रोतों का चयन करता है। उसके पूर्वाग्रहों पर भी निर्भर करता है। अगर वो बहुत पूर्वाग्रही है तो उसके शोध जो है उससे ग्रसित होते हैं। भविष्य का निर्माण करने का शोध इतिहास है, लेकिन भूत के निर्माण का शोध है आप के पास। जो बचे हैं उन्हीं को संभाल कर रखिये वह आपकी पूंजी है। सांस्कृतिक भी है। अर्काइव, रिकार्ड, किताब, यह आपकी सांस्कृतिक पूंजी है।

इतिहास में काल विभाजन परंपरा के हिसाब से किया है। यह सभी इतिहासकार मानते हैं। इतिहास एक अनवरत धारा है। जिसको आप पाठ्यक्रम में समा नहीं सकते, बांध नहीं सकते, लेकिन पूरी धारा को पढ़ना भी और समझना भी इतना आसान नहीं होगा। वह उस के लिए बहुत वक्त चाहिए और हमें बच्चों को पढ़ाना है, उन्हें तैयार करना है, तो उसे हिस्सों में बांटकर पढ़ाया जाता है। पाठ्यक्रम हर दो चार साल में बदलना चाहिए और नये ढंग से पढ़ाना चाहिए। यह निर्भर करता है शिक्षक पर, एक पढ़ने वाले बच्चे को वही मिलेगा जो उसे दिया जा रहा है, तो यह तो हमारे शिक्षक समुदाय पर बहुत निर्भर करता है और हमारे शोधकर्ताओं पर निर्भर करता है कि वो हमारे पाठ्यक्रम को हर चार पांच साल पर दुबारा देखे, जो नये शोध हुए, नयी चीजें आयी हैं, उन को सम्मिलित कर समय का विभाजन, स्पेस का विभाजन तो होगा। इस समय और स्पेस को सीमित करके भी पढ़ाया जा सकता है। शोध करने के लिए तो बहुत सी चीजें हैं। पूरी धारा पर भी आप इतिहास लिख सकते हैं। और एक छोटे से झरने पर भी लिख सकते हैं। दोनों में आनंद वही है, दोनों से सीख सकते हैं।

यदि आप किसी ऐतिहासिक घटना या धारा का अध्ययन करते हैं तो उसको उसकी समग्रता से लें। देखिए पूरी तरह से वस्तुनिष्ठ होना तो संभव नहीं है। कुछ तो पूर्वाग्रह होंगे, कुछ फ्रेमवर्क होगा उनका। स्वाभाविक है उससे मेरा कोई दुराव नहीं है, लेकिन कोशिश यही होनी चाहिए कि दूसरे के भी नज़रिये को उसमें जगह दी जाये और कुछ चीजें हैं जिस किस्म का इतिहास लिखता हूँ। मुझे ये लगता है कि कुछ चीजें आप पढ़नेवालों पर भी छोड़ दीजिए कि वो उनको कैसे लेते हैं। उनकी भी स्वायत्तता होनी चाहिए, इतिहास कोई धार्मिक ग्रंथ नहीं है। यह कोई रिव्यूलेशन नहीं जो आपका मन मोह ले जाता हो। इतिहास एक विश्लेषण है। इसलिए उसे उसी तरीके से पेश करना चाहिए। उस के समग्र तथ्य सही होने चाहिए। उस की संविधा, उसका स्वरूप वैसा ही हो जैसा पाया गया हो। उसमें अदला-बदली करना, तोड़-मरोड़ करना ठीक नहीं है।

प्रस्तुति : नितीन गायकवाड, भारतीय भाषा केन्द्र

इतिहास किसी की जागीर नहीं

रजत दत्ता



इतिहास सोचने के लिए मजबूर कर देता है, एक पुराना आयडिया है — इतिहास को रटना जो सबसे गलत है। अगर आप अपने अतीत को नहीं जानोगे, तो अपने वर्तमान को भी नहीं समझ सकते और भविष्य को भी। तो अतीत को जानना बहुत ज़रूरी है। अतीत को समझना बहुत ज़रूरी है और अतीत को जितना क्रिटिकल समझेंगे, उतना ही आज के लिए बेहतर है, इसलिए जेएनयू में हम लोग ऐसे कोर्सों को शामिल करते हैं। ...और ये जो चार कोर्स हैं इसे हमने जिस तरह से सजाया है, इससे स्टुडेंट्स को प्राचीनतम रूप से लेकर आधुनिकतम रूप तक का अध्ययन कराते हैं। एक भौगोलिक तौर पर दुनिया का इतिहास और इसमें ये दिखाने की कोशिश की जाती है कि उस बनावट में ही किस तरह से शोषण होता है, किस तरह से संस्कृति होता है, किस तरह से समाज और सभ्यता पर्यावरण का किस तरह से संबंध होता है। किस तरह से दुनिया का एक हिस्सा दुनिया के दूसरे हिस्से को डॉमिनेट करता है। इसकी वजह क्या है? तो इन चार कोर्स में एक तो क्रिटिकल अंडरस्टैंडिंग हो। क्रिटिकल का मतलब यह है कि आपको सोचना सीखाएं, आप को प्रश्न उठाना सीखाएं। ये जो व्यवस्था चल रही है, समाज में सभ्यता आ रही है, सिर्फ भारतवर्ष में ही नहीं हैं पूरी दुनिया में है।

समाज का मतलब है, शोषण। समाज बिना शोषण के चलता नहीं है। चाहे वह जाति-जाति का करे, वर्ण-वर्ण का करे या लिंग-लिंग का करे। समाज शोषण पर ही चलता आ रहा है। इस शोषण से ही समाज में कई तरह के कॉम्प्लेक्स पैदा हुए हैं। इससे संभावनाएं होती हैं, संभावनाओं से बदलाव आता है। तो ये चार फेजेस हम देख रहे हैं। ये चार फेजेस इसी संभावना और बदलाव किस तरह से आता है देख रहे हैं।

ये जो कोर्स हैं, कई जगह हम देख रहे हैं कि हमारे मुल्क में शुरू हुए हैं और हमारा जो मॉडल है वह है जेएनयू। ऐसे कोर्स आप को कहीं नहीं मिलेंगे, जिस विश्वविद्यालय ने इस तरह के कोर्स बनाये हैं, उस विश्वविद्यालय के छात्रों में एक अलग तरह की सोच आती है। हम देखते हैं जब कहीं छात्र साक्षात्कार देने आते हैं तो, उसमें जेएनयू के भी आते हैं। तब हमें लगता है कि जेएनयू के छात्रों में कुछ अलग विशेषताएं दिखाई देती हैं — उनकी सोच और समझ में। तब हमें लगता है कि ये कोर्स बहुत ही क्रिटिकल हैं। यह जेएनयू की बहुत बड़ी देन है। इसके अलावा हमें लगता है कि विशिष्ट कोर्स हैं। प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक। इनमें हम लोग कोशिश करते हैं कि जो भी युग हो एक अच्छा, संपूर्ण उसमें इकोनॉमी भी आता है, पॉलिटिक्स भी आता है, जेन्डर भी आता है, उसमें जटिलताएं भी आएंगी। क्योंकि समाज जुड़ता भी है और समाज

टूटता भी है, लेकिन मिलने पर ही समाज चलता है। तो यही हमारे कोर्स हैं। इसकी डिजाइन के पीछे एक उद्देश्य है।

अब जेएनयू सेंट्रल युनिवर्सिटी होने के नाते ये देखना पड़ता है कि हमारे कोर्स में सबको कुछ न कुछ मिले। कोई भी छात्र दो साल बाद यहां आकर यह न कहे कि सर, मैं आज भी उतना ही अंधकार में हूँ, जितना मैं यहां आने से पहले था। आप जब हमारे यहां आते हैं तो आपके ज्ञान में जो भी कमी रही है, वह हमारे साथ रहने के बाद भी उसी कमी को लेकर बाहर निकले तो यह हमारी असफलता है। जब आप दो साल बाद बाहर निकल कर कहें कि जाति, वर्ग समझ में आया, मुझे जेन्डर समझ में आया, मुझे पर्यावरण और समाज विज्ञान क्या है, यह सब समझ में आया तो हमारी ये सबसे बड़ी सफलता है।

हम देखते हैं कि जब जेएनयू के छात्र बाहर कहीं साक्षात्कार देने जाते हैं तो बाकी युनिवर्सिटी के छात्रों से हमारे छात्र कई मील आगे होते हैं ये बदलाव कहां से आया। बहुत सारे छात्र यहां पर सामाजिक पिछड़े वर्ग से आते हैं। कई तरह के पिछड़ेपन के साथ आते हैं, लेकिन दो-चार साल के बाद यहां से जब निकलते हैं तो उनके सोचने में बदलाव आता है, क्योंकि यह वास्तविकता हम तब देखते हैं जब किसी चयन समिति में बैठे होते हैं। लेक्चरर नियुक्त करने के लिए मुश्किल हो जाता है कि किस को लिया जाये, क्योंकि अक्सर देखा जाता है कि जेएनयू के छात्र ही पहले-दूसरे नंबर पर रहते हैं। न चाहें तो भी आ जाते हैं। क्योंकि ट्रेनिंग ही हमारे यहां की ऐसी है दे बीकम बेटर नॉट बेटर इन द सेन्स। हम यह नहीं कहते हैं कि दूसरे खराब हैं, लेकिन हमारी सोच से अंदाजा लगाया जाता है तो वही है कि इतिहास ही नहीं बल्कि किसी भी विषय की बात करे, मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि इतिहास में ज़्यादा हैं और राजनीतिशास्त्र में कम हैं। मैं सिर्फ इतिहास की बात कर रहा हूँ। जजमेन्ट की बात कर रहा हूँ। हमने जो ये कोर्स बनाए हुए हैं, रात-दिन जग कर टूटूरियल लिखना-पढ़ना पड़ता है। चर्चाएँ करनी पड़ती हैं। तर्क को समझाना पड़ता है। आप सिर्फ कमरे में बैठकर सोचते नहीं हैं। दस छात्रों के सामने अपना वक्तव्य रखना पड़ता है। जो सवाल आपसे पूछते हैं आपको समझाना पड़ता है। आपको उनके साथ बहस करना पड़ता है। बहस और चर्चा का माहौल जो कक्षा में है वह बाहर भी है। छात्र ढाबे पर बैठ कर चर्चा करते हैं। ऐसा माहौल अकादमिक से ही आता है। यहां के अकादमिक का माहौल ही बहस और चर्चा का माहौल है।

इतिहास का किस तरह का पाठ्यक्रम होना चाहिए? इसका कोई फार्मूला तय नहीं है, लेकिन जो पाठ्यक्रम हो इसमें चार-पांच चीजें बहुत ज़रूरी हैं। एक — समाज में जो कमी हैं,

उसकी वजह क्या है ? और इसका उससे निकलने का क्या जरिया है, उसकी बात नहीं करते, लेकिन जब तक आपका जेहन नहीं बदलेगा, तब तक समाज नहीं बदलेगा। जेहन तभी बदलेगा जब आप सोचेंगे, पढ़ेंगे, जब आप चर्चा करेंगे। जब आप दी हुई चीजों को नहीं मानेंगे, किसी ने कह दिया यही सही है तब आप खड़े होकर कहें कि नहीं—नहीं इतिहास बताता है कि गलत है। जब तक आप प्रश्न नहीं करेंगे, तब तक क्षमता नहीं आएगी—एक तो यह है। दूसरा यह है कि जेन्डर, जेन्डर हमेशा समानता के दायरे में चलता है। यह भी नहीं कि जेन्डर सिर्फ असमानता के दायरे में ही रहता है। परिवर्तन का एक बहुत बड़ा कारण है, जेन्डर। जब तक आप प्रतिरोध न करें जिसे कहते हैं आप की भाषा में आवाज़ ना उठाएँ, तब तक कनशेस क्या होते हैं, सामाजिक तनाव क्या होते हैं और यह सब जानने के लिए आप को इतिहास पढ़ना पड़ेगा। आपको लंबे समय का अनुभव रहेगा, दूसरे विषय में नहीं मिल सकता। इतिहास में आपको हजारों साल में क्या हुआ है और क्या हो रहा है इसका एक आयडिया मिलता है। जोकि दूसरे विषय में नहीं मिलता है। उसमें ज्यादातर फोकस आज पर होता है। वर्तमान को देखा जाता है। इतिहास का मूल ही है पीछे देखना, पीछे से सामने की तरफ देखना। बाकी विषय में आज को ही देखा जाता है। सामाजिक विज्ञान में आज पर ज्यादा जोर दिया जाता है। पर्यावरण और पारिस्थितिकी को देखा जाता है। बाकी अगर आप मनुष्य को देखेंगे, पेड़-पौधों पर इसका क्या प्रभाव रहा है। यह देखा जा सकता है। अब राजनीति—सियासत महत्वपूर्ण हो जाती है। ये पांच चीजें महत्वपूर्ण हैं। जेएनयू हो या किसी भी विश्वविद्यालय का पाठ्यक्रम अगर बनता है तो इसे ध्यान में रखना जरूरी है।

वैश्वीकरण एक प्रक्रिया है, जो इतिहास को लेकर चलती है। आजकल जो वैश्वीकरण दिखता है, वो 50-60 के दशक का है। 60 के दशक से लेकर जो चल रहा है वह वर्तमान वैश्वीकरण तक चला आ रहा है। वैश्वीकरण का संबंध आधुनिक प्रसार तक सीमित है। इतिहास आपको यह नहीं समझा पाएगा — आज के वैश्वीकरण से जुड़े मुद्दे। हमारे जो इतिहासकारों ने आधुनिक युग के उपनिवेशवाद के आधुनिकीकरण को, जो हमारे मुल्क में देखा है, या फिर पाश्चात्य यूरोप में भी देखा गया है। 1990 के दशक में वैश्वीकरण का चरित्र देखा गया है। इतना तो इतिहास में है। आज के वैश्वीकरण को इतिहास के संदर्भ में समझना मुश्किल सवाल है। ये एक हद तक समझा जा सकता है कि आप औद्योगिकीकरण कैसे हुआ है, उपनिवेशीकरण कैसे हुआ है। उपनिवेशीकरण से आधुनिकीकरण कैसे हुआ है। पर्यावरण में आधुनिकीकरण कैसे आ गया है। इतना तो समझा जा सकता है। इसके संदर्भ साफ है।

इतिहास क्या है ? यह तो बड़ा मुश्किल सवाल है। यह तो अब तक किसी ने समाधान कारक जवाब नहीं दिया है। अगर आप किसी दार्शनिक से पूछें कि दर्शन क्या है, तो वह

यही कहेगा, हां कुछ तो है, लेकिन मैं भी यही समझने की कोशिश कर रहा हूँ। इतिहास क्या है यह समझने की कोशिश कर रहा हूँ। इतना कह सकता हूँ कि इतिहास अगर कुछ है तो अतीत की खोज है, लेकिन अतीत से वह सवाल भी करता है।

इतिहास अतीत को व्यक्त करता है। खोज निकालता है कि अतीत और वर्तमान में क्या संबंध है। मैंने पहले ही कहा है कि अगर आप अपने अतीत को नहीं समझे तो वर्तमान को भी नहीं समझ पाएंगे। सीधा सा उदाहरण है अगर आप अतीत में जाति शोषण को नहीं समझे तो वर्तमान में भी जातिवाद को नहीं समझेंगे। इसका ऐतिहासिक संबंध नहीं होगा तो आप ये नहीं समझ पाएंगे कि यह निर्मित हुआ कैसे। अभी तो लगता है कि सब बन कर पुख्ता तैयार है, लेकिन ये बना कैसे, किस तरह से पुख्ता किया गया। इतिहास इसलिए बड़ा महत्वपूर्ण है। इतिहास किसी की जागीर नहीं है। यह सच्चाई है। इतिहास का दूसरा उद्देश्य यह है कि आपका सवाल उठाना। सवाल आप तभी उठा सकते हैं, जब आपने अतीत से प्रश्न करना सीखा है। अतीत पर सवाल उठाना ही आप के इतिहास लेखन का स्रोत है। यह इस पर भी निर्भर करता है कि आप किस समय पर काम कर रहे हैं। आप अति प्राचीन काल पर काम कर रहे हैं तो इस के स्रोतों को ढूँढना पड़ेगा। आप मध्यकालीन पर काम कर रहे हैं तो मध्यकाल का। आधुनिक युग में आएंगे तो और भी निर्भर करता है कि आप किस युग पर काम कर रहे हैं। आधुनिक पर डाक्युमेन्ट्री देखें, तो स्रोतों की कमी नहीं है।

इतिहास के स्रोत इतिहास के काल के मुताबिक देखने चाहिए, लेकिन इतिहासकार का एक ही काम होता है किसी भी स्रोत काल पर हो, किसी भी स्रोत को सौ प्रतिशत सच्चा न मानना, क्योंकि स्रोत लिखे जाते हैं, क्योंकि अधिकतर स्रोत उन्होंने लिखे थे जो समाज में विजयी लोग थे, जिन्होंने समाज पर काबू पाया। काबू पाने के बाद उन्होंने लिखा तो अब सवाल ये है कि किसने लिखा है। फिर आप उस से पढ़ना शुरू करते हैं। ना कि यह करें कि यही है, इस के आगे कुछ भी नहीं है।

ये जो आलोचनात्मक दृष्टिकोण है इससे इतिहासकार को एक अस्त्र मिलता है। अतीत किसी की बपौती नहीं। आप की है न मेरी। इसलिए कई तरह के इतिहास हैं। आपकी इतिहास की समझ कुछ और होगी, मेरी कुछ और होगी। आप मुझसे सवाल इसलिए पूछ रहे हैं कि मैं इतिहास पढ़ता हूँ, इसलिए मैं आपसे थोड़ा ज्यादा जानता हूँ। इसलिए आए हैं आप मेरे पास। आप किसी भी जगह चले जायें, मान लीजिए ट्रेन में सफर कर रहे हैं आप, तो आप से पूछेगा कि क्या करते हो भाई आप, और हिंदुस्तान में तो बातचीत शुरू ही हो जाती है, बैठते ही खाने-पीने की भी बात करते हैं।

हर एक इन्सान को इतिहास की समझ होती है और होनी चाहिए, लेकिन हर एक इन्सान को भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान आदि की समझ नहीं होती है। कोई भी आपको भौतिक

विज्ञान का फार्मूला नहीं बताएगा, लेकिन इतिहास जरूर बताएगा अब किस तरह का इतिहास बताएगा, इस पर हंसी भी आती है, लेकिन ठीक है आयडिया तो है। अतीत का आयडिया हर एक इन्सान के जेहन में होता है। पास्ट इज लिविंग प्रजेन्ट। हर एक के दिमाग में अतीत होता ही है। हर तरह से वह होता है।

ये उदाहरण दे रहा था कि लोग इतिहास को इतनी गंभीरता से समझते नहीं हैं, क्योंकि कह सकते हैं इतिहास उनके रोम-रोम में बसा हुआ है। उनको मालूम ही नहीं है कि आप जो सोच रहे हैं वो इतिहास ही है। आपको लगता है कि आप आधुनिक सोच रहे हैं, लेकिन वह हमेशा अतीत से जुड़ा हुआ होता है।

यह मैं लोगों से बातचीत करते इधर-उधर देखता हूँ कि ट्रेन में ज्यादा मजा आता है। हर तरह की बातें करते हुए। क्योंकि इतिहास किसी की जागीर नहीं है। इतना है कि जो प्रोफेशनल इतिहासकार हैं, जैसे हम लोग प्रोफेशनल इतिहासकारों के पास एक औजार होता है जो दूसरों के पास नहीं होता है। वह यह है कि प्रमाणिक स्रोत और गैर प्रमाणिक स्रोत में क्या अंतर है और उक्त स्रोत का उपयोग किस तरह से किया जाये – वह टूल हमारे पास है, साधारण व्यक्ति के पास नहीं होता है। तो जो इतिहास लिखते हैं, उसे हम कहते हैं जो अतीत है, उसका एक नजदीक रूप है लेकिन वास्तव में अतीत तो गया ही है और जो गया वह गया ही है। उसके बारे में सोच सकते हैं। कल्पना कर सकते हैं। उसके बारे में आप शोध कर सकते हैं, लेकिन रचनात्मक होना चाहिए।

इतिहास की दूसरी आवश्यकता यह है कि वो प्रमाणिक हो। कोई भी ऐसी परिस्थिति नहीं है जिसमें कि हम संपूर्ण हों। आपका इतिहास और मेरा इतिहास अलग है। आपकी इतिहास की समझ अलग है मेरी अलग है। बाबरी मस्जिद से लेकर किसी भी गुफा में चले जाइये इतिहास महत्वपूर्ण रहता है तो यह भी एक इतिहास का उद्देश्य है अतीत को ढूँढ लाना।

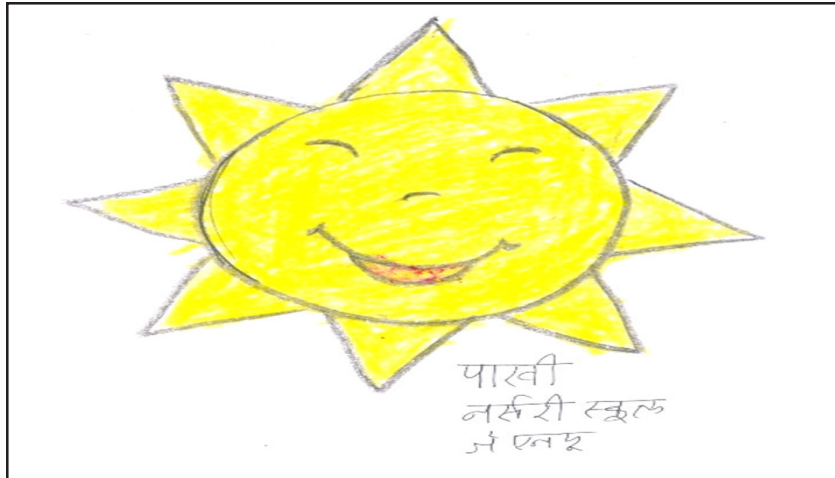
इतिहास आपको खुले मन से पढ़ना होगा। रटने से इतिहास नहीं आता। रटने से ऐतिहासिक तथ्य आते हैं, लेकिन

तथ्य और इतिहास में फर्क है। जैसे कि अकबर ने ऐसा किया था, औरंगजेब ने ऐसा किया था। वह कुछ-कुछ चुनिंदा तथ्य लोगों को आते हैं। इतिहास का चोला पहनकर लोगों को भरमाते हैं, लेकिन तथ्य और इतिहास अलग हैं – आप जिस समय के बारे में बात कर रहे हैं वह उस पर लागू होती है। वर्ना वह समय के बाहर की हो जाएगी। फिर उस का कोई फायदा नहीं है। तो वह समस्या बड़ी चीज है। स्रोत बहुत हैं, लेकिन इन्हें किस तरह से इतिहासकार सच्चाई से लेता हैं।

इतिहास पढ़ने का यह तरीका है कि जो भी पढ़े आप रचनात्मक होकर पढ़ें। आधारभूत किताब से शुरू करना चाहिए। उस के बाद पढ़ने-लिखने में कोई भी सीमा नहीं है। लगातार पढ़ते रहिए, खत्म नहीं कर पाएंगे। कल जो लेख पढ़ा वह आज पुराना लगता है। अगर हम बीस-पच्चीस साल पुराना पढ़ाएंगे तो क्या फायदा ? इतिहास पढ़ने का तो कोई भी फार्मूला नहीं है। इतिहास पढ़ने का तो तरीका यह है कि अगर आप अतीत को समझना चाहेंगे, तो सही हैं। अगर आपको अतीत के बारे में ग्रेड लाना है तो इतिहास पढ़ने का या कोई भी विषय पढ़ने का कोई फायदा नहीं है।

आपको ये करना है कि, सोचना है, इसे पढ़कर सवाल उठाना है। अगर आप अपने अतीत के बारे में सवाल उठा सकते हैं तो आप इतिहास अच्छी तरह से पढ़ रहे हैं। समाज का, वर्ग का, जाति का, प्रान्त का या राष्ट्र का कोई भी इतिहास आप पढ़ रहे हों आपने सवाल उठाये हों, आपने अतीत को जानने के बारे में और सवाल किया हो कि हमारा जो अतीत दिया गया है। वह अतीत हमको अच्छा नहीं लग रहा है, जो अतीत हम को दिया गया है। अतीत के बाहर निकल कर सवाल पूछने लगते हैं। उदा: कास्ट पॉलिटिक्स। भारतीय समाज में जाति और जनजाति इनका अस्तित्व आज से चार-पांच हजार साल पहले भी था, अब सवाल यह है कि आज का सवाल जब हम उठाएंगे पीछे देखना ही होगा। वो संदर्भ समझेंगे जो अपने अतीत के बारे में सवाल उठाएंगे।

प्रस्तुति : अजय कुमार यादव और नितिन गायकवाड़, भारतीय भाषा केन्द्र



इतिहास अतीत का एक क्रमबद्ध अध्ययन है

सलिल मिश्र



इतिहास अतीत का एक क्रमबद्ध अध्ययन है और पहला तो इतिहास इसलिए ज़रूरी है कि यदि हमें अपने समाज को समझना है, तो इतिहास को समझना ज़रूरी है। किसी भी समाज को हम उसके अतीत के बगैर नहीं समझ सकते, क्योंकि कोई भी समाज अचानक से नहीं पैदा होता। वह निरन्तर विकसित और निर्मित होता है, इसी तरह से इतिहास भी निरन्तर विकसित और निर्मित होता है। कुछ समुदायों का छोटा इतिहास होता है तो कुछ का बड़ा। यदि किसी समाज को अपने वर्तमान को भी जानना है, तो उसे पहले अपने अतीत को जानना होगा। दूसरा कुछ लोग कहते हैं कि भविष्य निर्धारण के लिए तथा नीति निर्धारण के लिए भी इतिहास को समझना ज़रूरी है। तीसरा ये कि इतिहास एक बौद्धिक कौतूहल, जिज्ञासा भी है, जिस तरह से हमें अपने अतीत के बारे में जानने के लिए इच्छा होती है, उसी तरह समाजों का इतिहास, समुदायों का इतिहास, विचारों का इतिहास जानने की इच्छा होती है तो भी हमें इतिहास की जरूरत होती है। अगर आप भारत में धर्म को, जातिव्यवस्था को, सामंतवाद को समझना चाहते हैं तो इतिहास पढ़ना होगा क्योंकि ये चीजे अचानक से नहीं आयी, इनका एक लम्बा इतिहास है। इसलिए इतिहास ज़रूरी है।

इतिहास के स्रोत दिन-प्रतिदिन बढ़ रहे हैं। वैसे मुख्यतया शिलालेख, ताम्रपत्र, सिक्के, साहित्य, पांडुलिपियाँ, पुरातात्विक सर्वेक्षण, धार्मिक ग्रंथ, चित्रकलाएँ, मिनिचर, स्थापत्य इत्यादि हैं। रोज नए शोध और नए दृष्टिकोण आ रहे हैं। वे भी इतिहास के स्रोत में बढ़ोत्तरी कर रहे हैं।

किसी भी इतिहास के पाठ्यक्रम के बारे में दो चीजें होती हैं – एक तो उसका स्वरूप क्या है और दूसरा उसके काल क्या-क्या है ? किसी भी इतिहास को आप काल में विभाजित किए बिना नहीं पढ़ सकते हैं। इतिहास का जो पीरियडाइजेशन है। वह औपनिवेशिक काल में जे.एस. मिल ने कर दिया था, उन्होंने धर्म के आधार पर किया था, हिन्दू काल, मुस्लिम काल, ब्रिटिश काल। वह तो हम नहीं मानते, फिर भी कमोवेश हिन्दू प्राचीन, मुस्लिम मध्यकालीन और ब्रिटिश काल आधुनिक काल हो गया। फिर जब और आगे शोध हुए, तो फिर परिवर्तन हुए, लेकिन कोई भी आधार या काल विभाजन बेहतर हो सकता है या 'अनसटिसफ़ैक्टरी' हो सकता है, मुख्य बात यह है कि हम काल विभाजन किस आधार पर करते हैं, हमारे प्रतिमान क्या हैं ?

ये निश्चित बात है कि ब्रिटिश का आना भारत के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना है, क्योंकि उन्होंने भारतीय समाज को बहुत ही बुनियादी तौर पर प्रभावित किया। ब्रिटिश

का जाना भी भारतीय इतिहास में एक बहुत बड़ी तारीख थी इसलिए हम जब भी इतिहास का पाठ्यक्रम बनाए तो इन दोनों घटनाओं पर विशेष ध्यान दें, क्योंकि ये दोनों घटनाएँ एक तरह से इतिहास की विभाजक रेखा के रूप में हैं। दूसरी बात ये कि इतिहास का स्वरूप क्या है? तो 19वीं शताब्दी तक भारत में जो इतिहास पढ़ा जाता था वह एक तो डायनेस्टिक होता था और राजाओं का होता था। वह राजनीति पर केन्द्रित होता था। पॉलिस्टिक्स ऑफ द पास्ट अर्थात् इतिहास का मतलब होता था कि अतीत की राजनीति को समझना। फिर जैसे-जैसे नए स्रोत आए, नयी पद्धतियाँ आयीं तो इतिहास में परिवर्तन होने लगे। अर्थव्यवस्थाओं का इतिहास पढ़ा जाने लगा, सामाजिक संरचनाओं का इतिहास पढ़ा जाने लगा, शोषण का इतिहास पढ़ा जाने लगा तो इतिहास लेखन की विषयवस्तु और सरोकारों में लगाकर परिवर्तन होते रहते हैं। जब मार्क्सवाद का उदय हुआ तो लोगों ने राजनीतिक संरचनाओं पर ज्यादा फोकस किया तब हमने ब्रिटिश सत्ता के साथ-साथ साम्राज्यवाद को पढ़ा, औपनिवेशिकता को पढ़ा, पूंजीवाद को पढ़ा जाने लगा तो इतिहास के सरोकारों में लगातार परिवर्तन हुए।

भविष्य को लेकर इतिहास के सामने तीन तरह की चुनौतियाँ हैं, हमारे देश के इतिहास को लेकर भी और दुनिया के इतिहास को लेकर भी। पहली चुनौती तो ये है कि अतीत हमारा लगातार बढ़ता चला जा रहा है, तो इतिहास के लिए स्रोत सामग्री लगातार बढ़ती जा रही है, जो समय बीत रहा है, वह हमारे अतीत का हिस्सा है और अतीत फाइनाइट नहीं है, तो इतिहास भी फाइनाइट नहीं है इसलिए उसका पाठ्यक्रम भी फाइनाइट नहीं है। इतिहास के पाठ्यक्रम में एक समय माना जाता था कि 1947 के बाद भारत का कोई इतिहास नहीं है, उसके बाद राजनीति है, अर्थशास्त्र है, जबकि इतिहास नहीं है, लेकिन वह दृष्टिकोण अब अप्रासंगिक है। हमें 1947 के बाद का हिस्सा इतिहास में शामिल करना होगा, क्योंकि वो हमारे अतीत का हिस्सा है। दूसरी चुनौती तो ये है कि इतिहास के स्रोत दिन-प्रतिदिन बढ़ रहे हैं, रोज-नए स्रोत मिल रहे हैं। अभी इमरजेंसी पर रोज नए रिकॉर्ड मिल रहे हैं, तो हो सकता है कि वे हमारे इतिहास लेखन के दृष्टिकोण को बदले और तीसरी चुनौती ये है कि दृष्टिकोण और विचार भी नए-नए आ रहे हैं। अतीत स्रोत और दृष्टिकोण तीनों में बढ़ोत्तरी हो रही है।

लेकिन हमारे लिए सबसे बड़ी चुनौती ये है कि पाठ्यक्रम में क्या पढ़ाया जाए तो मेरा मानना है कि हमें सेलेक्टिव तो होना पड़ेगा, क्योंकि हम सभी चीजे पाठ्यक्रम के

स्तर पर नहीं पढ़ा सकते। एक बाउंड्री लाइन खींचनी ही पड़ेगी। मेरा मानना है कि इतिहास के पाठ्यक्रम में विद्यालय और विश्वविद्यालय स्तर पर एक बुनियादी एक्सप्लेन इतिहास पढ़ना चाहिए और बुनियादी एक्सप्लेन इतिहास की मेरी अपनी समझ है। मेरा मानना है कि इतिहास में किसी भी समाज के 'स्ट्रक्चर ऑफ पॉवर' और 'प्रोडक्टिव रिलेशन' पर ज़रूर बात होनी चाहिए। ये दोनों चीजें ज़रूर पढ़ाई जाएं और भी बहुत सी चीजें हैं जैसे कि उस समाज का रहन-सहन क्या है? संस्कृति क्या है? साहित्य क्या है? इन चीजों का भी अध्ययन है, लेकिन मेरा मानना है कि ये सारी चीजें इन्हीं दोनों से जुड़ी हैं।

पहले ब्रिटिश प्रशासकों ने भारत का इतिहास लिखा, लेकिन उनके इतिहास लेखन के अपने पूर्वाग्रह थे, उसमें ढेर सारी समस्याएँ हैं। फिर भारतीयों ने बेहतर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से इतिहास लिखा, जिसमें मार्क्सवादी दृष्टिकोण सर्वप्रमुख है। डी.डी. कौशाम्बी हमारे पहले बड़े इतिहासकार हैं। प्राचीन भारत पर डी.डी. कौशाम्बी, रामशरण शर्मा, रोमिला थापर, मध्यकालीन

भारत पर इरफान हबीब, सतीश चन्द्र, आधुनिक भारत पर विपिन चन्द्र, सुमित सरकार ने इतिहास लेखन किया। इन सब पर मार्क्सवादी दृष्टिकोण का प्रभाव था। ये लोग किसी पार्टी के मेम्बर नहीं थे लेकिन इन लोगों ने मार्क्सवाद को एक 'टूल ऑफ एनलिसिस' के रूप में प्रयोग किया और बेहतर इतिहास लिखा। एक बहुत ही महत्वपूर्ण तथ्य है कि कार्ल मार्क्स ने जितना भारत के बारे में लिखा है इनमें से किसी ने भी इनको नहीं माना। 'एशियाटिक मोड ऑफ प्रोडक्शन' के सिद्धांत या भारत के बारे में अन्य मान्यताएँ सभी को इन्होंने खारिज कर दिया, क्योंकि भारत के बारे में मार्क्स की समझ बहुत सीमित थी। इन सभी भारतीय इतिहासकारों ने मार्क्सवाद को केवल एक 'टूल ऑफ एनलिसिस' के रूप में लेकर भारतीय इतिहास लेखन को एक बेहतर दृष्टिकोण प्रदान किया और दिशा दी। उनके इतिहास लेखन में कुछ समस्याएँ हैं, उसमें संशोधन की भी ज़रूरत है, लेकिन निश्चित रूप से मार्क्सवादी दृष्टिकोण ही इतिहास को समझने का एक बेहतर नज़रिया हो सकता है।

प्रस्तुति – अजय कुमार यादव





**प्रो. रामबक्ष हिंदी के चर्चित आलोचक और भारतीय भाषा केंद्र में हिंदी के प्राध्यापक हैं।
यहाँ प्रस्तुत हैं उनके हिंदी पाठ्यक्रम संबंधी विचार।**

आज के संदर्भ में हिंदी की दशा और दिशा के विषय में कुछ भी कहना बहुत आसान नहीं है। आज विज्ञान और टेक्नोलॉजी बहुत आगे निकल चुके हैं। हिंदी के विद्यार्थी के पास भी इन सुविधाओं की पहुंच होने लगी है, यह अच्छा संकेत है।

सबसे पहले भाषा। भाषा का एक पाठ्यक्रम है, जिसमें भाषा सीखी जाती है, जो संप्रेषण का माध्यम है। भाषा से ज्ञान अर्जित किया जाता है। ज्ञान संप्रेषित किया जाता है, यानी भाषा की बारीकियों को साहित्य के माध्यम से अधिक अच्छी तरह से समझा जा सकता है। इसलिए जो क्लासिक साहित्य है, जो साहित्य का मूल रूप है, जैसे कबीर, जायसी, सूर, तुलसी आदि की कविता उसके अध्ययन पर ज्यादा जोर होना चाहिए।

आजकल प्रायोगिक पाठ्यक्रम पर भी जोर है। अनुवाद, तुलनात्मक अध्ययन, फंक्शनल हिंदी जैसे पाठ्यक्रम का प्रचलन हो रहा है। यह ठीक है, लेकिन जब तक मूल साहित्य न समझा जाएगा, तब तक मूल भाषा नहीं समझी जाएगी। जब तक भाषा का मूल नहीं समझा जाएगा तब तक उसका उचित प्रयोग भी नहीं समझा जा सकता। प्रायोगिक के बदले मूल साहित्य पर जोर होना चाहिए। इससे हमें बहुत सारी चीजें अनायास ही आ जाती हैं। अगर कोई कबीर की कविता की पंक्ति का अर्थ कर सकता है, तो वह किसी शासन अधिकारी की टिप्पणी की भी अच्छी व्याख्या कर सकता है। मनुष्य को भी अच्छी तरह समझ सकता है। अतः साहित्य के अध्ययन का जोर मूल साहित्य से जुड़ा होना चाहिए।

दूसरी बात, भाषा का भविष्य देश के साथ जुड़ा होता है। भाषा को सिर्फ भाषा के अध्यापक और विद्यार्थी नहीं बचाते हैं, वह पूरे राष्ट्र की अस्मिता बचाती है। अगर कोई राष्ट्र संसार में शक्तिशाली है, तो उसकी भाषा भी शक्तिशाली होगी। अगर देश विकास में पिछड़ा हुआ है तो भाषा भी पिछड़ी हुई होगी। आज अंग्रेजी का वर्चस्व है, क्योंकि अमेरिका का वर्चस्व है, जिस भाषा में जितना अधिक अनुवाद होता है, वही श्रेष्ठ भाषा मानी जाती है। जिस भाषा में इंटरनेट पर जितनी

ज्यादा और अच्छी सामग्री मिलती है, वही भाषा श्रेष्ठ है। हम तुलना करके देख लें संसार की कितनी भाषाओं का हिंदी में अनुवाद हुआ है, हमें अपनी वास्तविक स्थिति का ज्ञान हो जाएगा। इस मामले में भी अंग्रेजी ही आगे है।

हमारे विश्वविद्यालयों का पाठ्यक्रम ठीक है। संतुलन रखने की कोशिश की गई है। इसमें कविता भी है। प्रायोगिक पेपर हैं। इसके अलावा वर्तमान में जो चीजें होती हैं उनको भी पाठ्यक्रम में रखने की कोशिश की जाती है। कई बार एक किताब हटा कर दूसरी जोड़ दी जाती है।

मेरे खयाल से भारतीय विश्वविद्यालयों में पाठ आधारित पाठ्यक्रम की मात्रा बढ़नी चाहिए। हिंदी के अध्यापकों को पाठ आधारित पाठ्यक्रम को अधिक जिम्मेदारी से पढ़ाना चाहिए। पाठ को समझने के लिए उन्हें साहित्य-सिद्धांत, इतिहास, परंपरा और जीवन की भी गहरी समझ होनी चाहिए। पर इन चीजों का इस्तेमाल टूल के रूप में ही होना चाहिए। मूल में पाठ ही होना चाहिए।

हिंदी साहित्य-सिद्धांतों का अनुवाद दूसरी भाषाओं में होना चाहिए और दूसरी भाषाओं का साहित्य और सिद्धांत हिंदी में भी अनुदित होना चाहिए। हमारी खिड़कियां खुली होनी चाहिए। दूसरे कला माध्यमों में क्या हो रहा है, इसकी जानकारी भी जरूरी है।

हिंदी साहित्य के क्षेत्र में विशेषज्ञता पी-एच.डी. से शुरू होती। हिंदी अध्यापन की परंपरा विद्यार्थी को साहित्य के सभी अंगों का ज्ञान करना है। जब वह शोध करता है तब वह साहित्य के किसी एक अंग में विशेषज्ञता हासिल करता है।

हमारे यहां प्राचीन और मध्यकालीन साहित्य को पढ़ाने में दिक्कत हो रही है। बोलियां खत्म हो रही हैं, इसलिए पुराने साहित्य को पढ़ने और उस पर शोध करने के लिए प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को उत्साहित करना चाहिए।

भविष्य की हिंदी खड़ी बोली हिंदी का भविष्य हैं भूमंडलीकरण की वजह से संसार में चार-पांच भाषाएं ही बची रह जाएंगी। अगर हमारा देश मजबूत रहा तो हमारी भाषा भी बची रह जाएगी।

ऐसा कोई साहित्य नहीं जो समाज से सरोकार नहीं रखता
जी.जे.वी. प्रसाद



प्रो. जी.जे.वी. प्रसाद अंग्रेजी के महत्वपूर्ण लेखक हैं। वे जेएनयू के अंग्रेजी अध्ययन केंद्र में प्रोफेसर हैं। यहाँ प्रस्तुत है उनसे गणपत तेली के साथ हुई बातचीत के महत्वपूर्ण अंश एवं

उनकी कविताएं।

प्रो. प्रसाद आप आलोचक भी हैं, कवि भी हैं और उपन्यासकार भी हैं। सबसे पहले हमें यह बताइये कि आपने रचनात्मक लेखन कब और कैसे शुरू किया ?

मैं तो बचपन से लिख रहा हूँ। मुझे याद नहीं है कि मैंने पहली कविता कब लिखी थी। मेरे दादाजी अंग्रेजी में कविता लिखते थे और कवि का मतलब हमें यों मालूम था कि उनके पास एक पैसा भी नहीं था। बहुत ही गरीब थे, मगर कविता में बहुत दिलचस्पी थी। वे कविता हमारे सामने लिखते और बोलते थे। कभी कहीं गए और कोई दृश्य देखा और कविता लिखने लगे और वे बहुत बोलते थे, हमसे कहते थे कुछ बोलो, कुछ बोलो। हम सब परिवार के लोग कवि जैसे थे, मगर कहते हैं न कि पच्चीस साल की उम्र तक तो सब लिखते हैं, पच्चीस साल के बाद जो लिखता है, वो ही कवि होता है, तो पच्चीस साल की उम्र तक हमारे परिवार के सारे सदस्य लिखते थे, लेकिन शायद मैं और मेरा छोटा भाई ही हैं, जो पच्चीस साल की उम्र के बाद भी लिखते रहे हैं, इसलिए हम कह सकते हैं हम कवि हैं। उस समय एक पत्रिका निकलती थी, चिल्डरन्स वर्ल्ड। अब पता नहीं है या नहीं। वो शंकर की पत्रिका थी। उनमें मेरी बहुत सी रचनाएँ प्रकाशित हुई थीं। वो शुरुआत थी। मैं जिस स्कूल में पढ़ता था, वहाँ पर कोई नहीं ऐसा कोई मौका था ही नहीं। वह सरकारी स्कूल था, पैसा ही नहीं होता था, संसाधन नहीं होते थे, इसलिये वहाँ तो कोई मौका नहीं था और इन पत्रिकाओं में मेरी रचनाएँ छपती थी। जब मैं कॉलेज गया, तो कॉलेज की पत्रिका में मेरी रचनाएँ छपने लगीं तो लोग कहते थे कि ये बढ़िया लिखता है। मैं इंजीनियरिंग कॉलेज में था तो वहाँ तो मैं काफी अलग सा हो गया था। वहाँ तो यह था कि कौन बढ़िया आदमी है, वहीं जो पत्रिका में लिखता है, लेकिन जब मैं हिन्दू कॉलेज जैसे कॉलेज में आया तो वहाँ सब लिखते हैं, फिर आपका वह विशिष्ट स्थान नहीं रहता है। मगर तब तक मुझे लगने लगा कि अंग्रेजी में लिखने का कोई फायदा नहीं है। ये मैं बात कर रहा हूँ सत्तर के दशक की। तब लग रहा था कि अंग्रेजी तो कुछ दिनों में खत्म हो जाएगी और उसमें लिखने का मतलब यह है कि आप छोटी सी दुनिया के बारे में में और छोटे से पाठक वर्ग लिखते हैं, इसमें क्या है! इससे मुझे एक फायदा हुआ मैंने अपनी मातृभाषा तमिल के साहित्य को खूब पढ़ा, उसका फायदा मुझे बाद में हुआ। मैं पला-बढ़ा तो दिल्ली में, लेकिन मेरी मातृभाषा तमिल है। उस वक्त मुझे लगा कि मैं तमिल साहित्य के बारे में बहुत अधिक नहीं जानता हूँ, इसलिए

मैंने खूब पढ़ा और जब तमिल में लिखना शुरू किया तो एक तमिल पत्रिका के संपादक ने मुझे चिट्ठी लिखी कि आपका लिखा पढ़ कर बहुत मजा आया, इसलिए मजा आया कि ऐसी तमिल मैंने कभी पढ़ी ही नहीं। लगता है कि आप पैदाईशी दिल्ली वाले हैं, आपका पता दिल्ली का है। मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि आप हिन्दी में लिखिये, पंजाबी में लिखिए (उनके लिये तो पंजाबी और हिन्दी तो एक ही थी!) या अंग्रेजी में लिखिए। आप तमिल में लिखना छोड़ दीजिए। मेरे खयाल से वह गलत था। उनको यह कहना चाहिए था और लिखिए। ये अच्छा लिखा है, ये अच्छा लगा, वो अच्छा लगा, ये नहीं लगा लेकिन आप और लिखिए। वह एक अवसर छूट गया, जब मैं तमिल साहित्य में आ सकता था, लेकिन आ नहीं पाया। तब मैंने अंग्रेजी में लिखना शुरू किया, बीच में कभी-कभी तमिल। तो मैंने ऐसे लिखना शुरू किया। हिन्दी की तो बात ही अलग थी। मेरी हिंदी वैसी थी नहीं और मुझे लगा कि मैं तमिल में नहीं लिख पाया तो हिन्दी में क्या लिखूँगा। फिर तो अकादमिक जीवन में अंग्रेजी आ गई।

आपके लेखन पर जेएनयू का क्या प्रभाव पड़ा ?

एक चीज मैं बताऊँ जेएनयू का एक प्रभाव रहा, उसने मेरे बोलती बंद कर दी। जब आप आलोचनात्मक लेखन ज्यादा करते हैं तो आपका रचनात्मक लेखन मुश्किल हो जाता है। आप अपने लेखन के बारे में बहुत क्रिटिकल हो जाते हैं। मैं लिखता रहता हूँ और फाड़ता रहता हूँ। लिखते समय अच्छा लगता है, लेकिन उससे संतुष्टि नहीं मिलती है, तो फिर प्रकाशित कराने का मन नहीं होता है। ये आलोचनात्मक विवेक जेएनयू से आया, और, दूसरा यह कि मेरा काम सेंटर में इतना बढ़ता गया कि लिखने का समय कम हो गया है। ये अकादमिक की वजह से नहीं, जेएनयू की वजह से हुआ। एक छोटा सा सेंटर, उसमें आप पांच लोगों से सब काम करवाइये, हर साल आप विद्यार्थी बढ़ाते जाइये लेकिन नई नियुक्तियां नहीं होंगी ! इतना काम होता है कि आपके पास लिखने का समय ही नहीं रहता। अब लिखने विद्यार्थियों और कक्षाओं का वक्त तो नहीं दे सकते! जेएनयू में रचनात्मक लेखन करने का बहुत बढ़िया माहौल है। अगर कोई कहे तुम रचनात्मक लेखन के अध्यापक हो वही करो- रचनात्मक लेखन का एक कोर्स पढ़ाओ और तुम रचनात्मक लेखन करो। रचनात्मक लेखन से तुम्हारा मूल्यांकन भी होगा। वाकई में, जेएनयू में इतनी कहानियां हैं, इतनी हैं

सुनते रहता हूँ कि पूरा जीवन उन कहानियों की रचना कर सकता हूँ, लेकिन मैं कर नहीं पाया।

आपके अनुसार साहित्य क्या है ?

साहित्य के बारे में मेरे दो मत हैं, एक कि ऐसा कोई साहित्य नहीं है, जो समाज से सरोकार नहीं रखता है। मैं लिखता हूँ, क्योंकि मुझे कुछ गलत दिखता है। कुछ समस्या होगी, तभी तो आप लिखते हैं। अगर कोई दिक्कत ही नहीं है, जिन्दगी आराम से चल रही है, दुनिया आराम से चल रही है, तो आप क्या लिखेंगे और क्यों लिखेंगे! लेकिन जब आप लिखने लगते हैं, तो एक अंतर्द्वंद्व से गुजरना पड़ता है। रचनात्मक लेखन अंतर्द्वंद्व से उपजता है। कुछ तनाव होगा, तभी तो लिख पाएंगे। साहित्य का तो समाज से जुड़ाव होना ही चाहिये, लेकिन दूसरी तरफ यह है कि आप पाठकों को तभी प्रभावित कर पाएंगे जब आपने अच्छे-से लिखा हो। यह थोड़ा सा विरोधाभासी है, मैं केवल यह नहीं मानता कि साहित्य को सामाजिक सरोकार रखने चाहिये बल्कि आपके पास आकर्षक भाषा भी होनी चाहिये। यदि आप में सौंदर्यात्मक कौशल नहीं है, आपको भाषा के साथ खेलने का मन नहीं है तो फिर मुझे वह अच्छा लेखन नहीं लगता है। अगर आप राजनीतिक नारे भी लगा रहे हैं तो उनमें रचनात्मकता होनी चाहिये।

आप रचनाकार होने के साथ-साथ आलोचक भी हैं। हमें यह बताइये कि भारत में अंग्रेजी साहित्य की मुख्य प्रवृत्तियाँ क्या रहीं ?

एक चीज बताऊँ पहले, जैसा कि मैंने संकेत किया था कि एक आलोचक होना, रचनात्मक लेखक का विरोधी होना है। ये विभाग साहित्यिक सिद्धांतों के लिए बहुत प्रसिद्ध था, तब नहीं था लेकिन धीरे-धीरे हो गया था। देखिये मेरे लिये तो लेखक की मौत हुई ही नहीं थी। मैं लेखक का मंतव्य देखता था इसलिये एक लेखक के तौर पर मैं कहूँगा कि मैं तो जिन्दा हूँ और मेरे मंतव्य हैं। खैर, आप भारतीय अंग्रेजी साहित्य की प्रवृत्तियों की बात कर रहे हैं तो यह बहुत दिलचस्प है। भारतीय अंग्रेजी साहित्य एक अजीब परिघटना लगता है। इसकी शुरुआत के बारे में, लोग कहते हैं कि हम पर थोपा गया था – यह बिल्कुल गलत बात है। हमने इसे मांगा था। किसी ने भी मांगा हो लेकिन मांगा था, मार्केट ने तो मांगा ही था। इसकी ईमानदारी लेकिन लोगों ने मांगा। कोलकाता में जब ईस्ट इंडिया कम्पनी आई थी, वहाँ पर अंग्रेजी, पुर्तगाली, उच्च, फ्रांसीसी, स्पानी, उर्दू, फारसी, अरबी सब कुछ भाषाएँ थीं, लेकिन लोग क्या चाह रहे थे, अंग्रेजी, क्योंकि व्यापार और अवसर की भाषा होनी वाली थी। मैं यह बात 19वीं शताब्दी के शुरुआती दौर की बात कर रहा हूँ, उस समय कलकत्ता में अंग्रेजी पढ़ाने की टीचिंग शॉप खुल गये थे, आज जैसे हम देखते हैं वैसे ही। तो पहले हमने मांगा, बाद में उन्होंने हमारे ऊपर अंग्रेजी थोपी थी और हम बाद में भी मांग रहे थे। भारतीय महानुभवों में राजा राम

मोहन राय ने चिट्ठी लिखी कि हमें अंग्रेजी शिक्षा चाहिए। तो ये सब है, अंग्रेजी हमने मांगा। अब बीसवीं शताब्दी देखें तो अब भी अंग्रेजी हम मांग रहे हैं कि हमें अंग्रेजी सीखना है। यह इतिहास की बहुत ही मजेदार बात है, 'अंग्रेजी हटाओ' का नारा बीच में आया था, लेकिन हमने अंग्रेज को हटा दिया, अंग्रेजी को नहीं हटाया। अब साहित्य की बात करें तो लोग अक्सर साहित्य में अनुकरण की बात करते हैं। यह बात सही नहीं है। उन्नीसवीं शताब्दी के शुरुआती दौर में जो लोग भारत में अंग्रेजी में लिख रहे थे, वे वैसे लिख रहे थे, जैसे अंग्रेज लिख रहे थे। सब लोग एक ही किस्म की कविता पढ़ रहे थे। ये नहीं है कि अंग्रेजों की नकल कर रहे थे, अंग्रेज भी वहीं कर रहे थे। ये लोग नकल नहीं कर रहे थे, ये लोग उस समय जैसी कविता लिखी जा रही थी, वैसी ही कविता लिख रहे थे। अब भी वही हाल है, भारत में वैसा ही साहित्य रचा जा रहा है, जैसा बाहर और दूसरे साहित्य में रचा जा रहा है। तो ये अनुकरण नहीं है, बल्कि साहित्यिक क्षण है। दूसरी बात यह है कि अंग्रेजी में जो लिखा गया है, वह किसी भाषा के साहित्य से पहले लिखा गया है। उसमें सबसे पहले आता है, राष्ट्रवाद का विचार। यह सबसे पहले अंग्रेजी में आया। अंग्रेजी साहित्य में लोग स्वतंत्रता की बात कर रहे थे जबकि कई भाषाओं के साहित्य में यह चेतना भी नहीं आई थी कि हम स्वतंत्र नहीं हैं। ऐसा इसलिये हुआ कि अंग्रेजी के रचनाकार आज़ादी की धारणा वाला साहित्य पढ़ रहे थे। वही इतिहास पढ़ रहे थे जो अंग्रेज लोग पढ़ रहे थे। तो इनमें चेतना आई कि हमें स्वतंत्र होना चाहिए। अब प्रवृत्तियों की बात करें तो राष्ट्रवादी साहित्य तो अब नहीं लिखा जाता है, किसी भी भाषा में नहीं लिखा जा रहा होगा। अब दो तरह की धाराएँ आ गई हैं एक वैश्विक और दूसरी स्थानीय। अंग्रेजी साहित्य में आप दोनों ही धाराएँ देख सकते हैं। मद्रास, बम्बई, केरल, इलाहाबाद, कश्मीर आदि पर भी साहित्य लिखा जा रहा है, तो प्रवासी लेखकों का साहित्य भी है। यह भी भारतीय साहित्य में आता है। हालांकि लोग सोचते हैं कि भारतीय अंग्रेजी साहित्य वही है, जिसे प्रवासी लेखक लिख रहे हैं, जबकि यहाँ पर भी बहुत से लेखक हैं जैसे अनीता नायर, कावेरी नम्बीशन आदि लेकिन इनके बारे में लोग जानते ही नहीं हैं। यहाँ पर उनका सर्कुलेशन भी है, लोग पढ़ रहे हैं उनको। हमारे यहाँ का छात्र है स्वामी खान, उसका पिछले साल अंग्रेजी में उपन्यास छपा है, वह दो बार निकल चुका है। उसको अवार्ड भी मिल चुका है। जाहिर सी बात है लोग पढ़ रहे हैं तभी तो उसे दुबारा छपा जा रहा है। उसका दूसरा उपन्यास भी छापना चाहते हैं। यहाँ तीन हजार लोग पढ़ रहे हैं, बाहर छपता तो तीस हजार लोग पढ़ते हैं। ये तो खैर वैश्विक अर्थव्यवस्था का मामला है।

तो इस लेखन में महत्वपूर्ण मुद्दे कौन से हैं जिनका उल्लेख आप करना चाहेंगे ?

वही मुद्दे, जो अन्य भाषाओं और भारतीय साहित्य में हैं। नारी के बारे में, जाति के बारे में, धर्म के बारे में, क्योंकि चिंताएँ

तो सबकी एक ही हैं। मैं तो इसलिये कहता हूँ और छात्रों के साथ मेरा प्रयत्न भी रहा है कि यदि आप अंग्रेज़ी पढ़ रहे हैं तो उसके साथ एक भारतीय भाषा भी पढ़िये। मैं तो कहता हूँ कि अंग्रेज़ी भी भारतीय भाषा है और उसके साथ आप कोई अन्य भारतीय भाषा भी पढ़ें।

जैसा भारतीय भाषा केन्द्र में हिन्दी-उर्दू के पाठ्यक्रम में है।

हाँ, लेकिन उन्हें अंग्रेज़ी भी एक मुख्य विषय के रूप में छात्रों को पढ़ने के लिए प्रेरित करना चाहिये। दूसरा साहित्य भी पढ़ना चाहिये, जो मर्जी हो, वो भाषा जानना चाहिये और पढ़ना चाहिये क्योंकि भारत में आप बिना तुलनात्मक साहित्य के कुछ नहीं कर सकते हैं। इसलिये हमारे संस्थान में यह हो सकता था, शायद कभी होगा भी। इसी तुलनात्मक दृष्टिकोण से भारतीय तुलनात्मक साहित्य का अध्ययन और इसी तरीके से यूरोपीय तुलनात्मक साहित्य। दोनों को अलग-अलग पढ़ना चाहिये, एक साथ नहीं।

प्रायः यह देखा गया है कि अधिकांश भारतीय भाषाओं में रचनात्मक लेखन करने वाले लेखकों को प्रोत्साहन नहीं मिलता है ...

किसी को नहीं मिलता, किसी भी भाषा में नहीं मिलता। मैं एक बात बताता हूँ आपको, जो अंग्रेज़ी में लिखते हैं, उन्हें देशद्रोही माना जाता है। जब भी आप भारत की बात करते हैं। उनकी बात नहीं करते हैं, सिर्फ उनकी बात करते हैं जो बाकी भारतीय भाषाओं में लिख रहे हैं। तो यहाँ पर लगता है कि मैं इतना लोकेटेड हूँ, अपने इलाहाबाद के बारे में लिख रहा हूँ, मैसूर छोड़िये उसके पास के गांव की बात कर रहा हूँ, लेकिन मुझे भारतीय लेखक नहीं माना जाएगा, लेकिन यदि कोई कन्नड़ में लिख रहा है, भले ही वो एलिट हो, असली भारतीय

वो हो जाएगा। तो यह सब होता है यहाँ पर। खैर, फेडरल देश है, एक भाषा वाले दूसरी भाषा वाले से लड़ते रहते हैं, लेकिन इसके लिये जरूरी है कि सरकार की प्रतिबद्धता हो, जनता की प्रतिबद्धता हो।

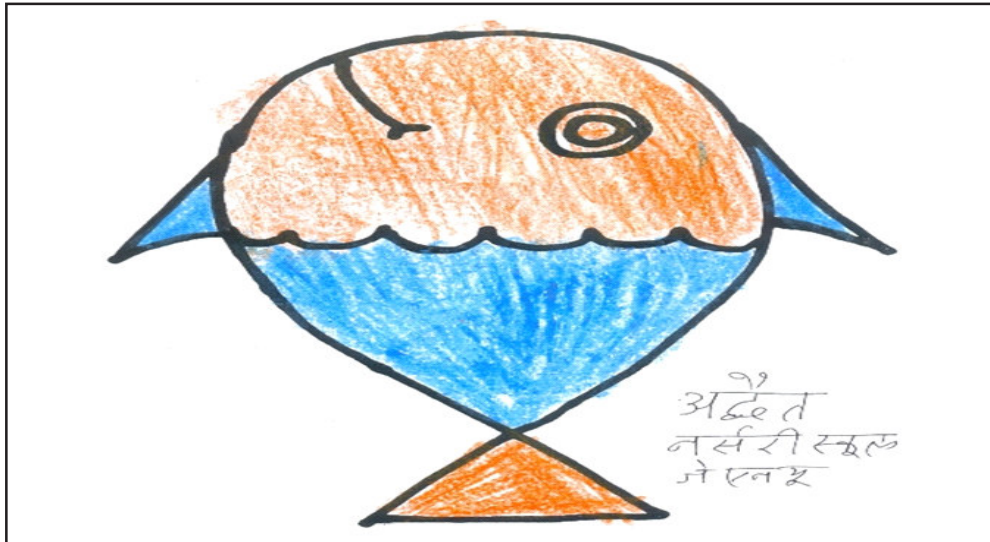
जैसा कि विज्ञान, सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में शोध के लिये कई संस्थाएँ बनी हुई हैं, वे लेखन के लिये फ़ैलोशिप या अन्य आर्थिक सहायता भी देते हैं, लेकिन साहित्य के क्षेत्र में...

कुछ पहल हुई हैं, लेकिन बहुत छोटे स्तर पर और ज़्यादा से ज़्यादा राइटर इन रेजीडेंस देते हैं। उतना नहीं है। उतनी लोकप्रियता नहीं है। वैसे भी कम है और जो है भी उसका भी राजनीतिकरण हो जाता है।

इस बार आपसे एक आखिरी सवाल, अभी आपकी क्या योजनाएँ हैं या ऐसा क्या है जो आप लिखने जा रहे हैं तथा बताना आप ज़रूरी समझते हैं ?

मेरी योजना है कि वक्त निकालकर लिखना शुरू करूँ। मेरी क्या योजनाएँ हैं, यह ठीक-ठीक नहीं बता सकता ! इतना काम है कि मेरे दो उपन्यासों की पाण्डूलिपि तैयार है, लेकिन उन्हें दोबारा देखने का ही वक्त नहीं मिल रहा है। ज़्यादा-से-ज़्यादा कविता लिखने के लिये वक्त मिलता है मुझे। कविता तो ऐसा है कि कभी-कभी दस मिनट में लिखी जा सकती है, लेकिन उपन्यास तो ऐसे नहीं लिखे जाते हैं, उनके लिये तो समय चाहिये।

हम उम्मीद करते हैं कि आप जेएनयू के जिन किस्से-कहानियों की तरफ इशारा कर रहे हैं, उन्हें आपकी रचना प्रक्रिया से गुजरने का अवसर मिले और हमें अच्छा साहित्य पढ़ने का मौका मिलेगा। आप से बात करके बहुत अच्छा लगा। शुक्रिया!



जी.जे.वी. प्रसाद की दो कविताएं

भारत की खोज में

दिल्ली में बगैर वीजा
और मद्रास में आर्य भेदिया
आसाम में निर्मम व्यापारी
और बम्बई में घुसपैठिया

कश्मीर की बात न ही करें
तो बेहतर है

जब वे राष्ट्र कहते हैं
मुझे पहाड़ियों से धकेल दें
और मैदानों से भी बाहर ठेल दें

मैं चुप रहूँगा
जब भी भारत की बात होगी
वादा करता हूँ
अब नहीं
मैं चुप रहूँगा

नट्टू

राख अस्थिराँ
मैं बुदबुदाया— 'नट्टू'

गोपी ने
जैसे छीन लिया हो
थोड़ा—सा ही सही
जो उसकी याद दिलाते रहे

ठीक उसी मुहाने के पास
यादों का एक रिसता हुआ कलश
हमने सागर में बहा दिया
वह मुहाना तो जैसे
नट्टू के भीतर ही रचा—बसा था

किसी ने कहा—
हम सागर की लहरों की तरह हैं
अल्पजीवी लहरों की तरह
जो शाश्वत भी है
और अगले ही पल
कहीं भी नहीं

थोड़ी—सी राख
हमने प्लास्टिक की थैली में रख ली
और पहाड़ियों की ओर ले गए

उन पहाड़ियों की ओर
जिनसे उसने बहुत प्यार किया था।
निर्मल पवित्र धारा की गोद में
कुछ अवशेष, कुछ राख

पलटती किनारे की ओर
चली आई प्लास्टिक की थैली में*
राख के कण अब भी बाकी थे
नट्टू ने हमेशा ही ज़िन्दगी को
पूरेपन के साथ जीना चाहा था

मैंने थैली को
साफ़ बहते पानी से धो दिया
किसी ने कहा—
धारा सागर से मिलने अबाध दौड़ती है और
भीतर एक आशा पलती है ,
बन्धनों से मुक्ति की आशा

यह हवन किसलिए
—पूनम ने पूछा
क्या जरूरत है इन चीजों की
जैसे उसे याद करने के लिए
कोशिश करनी पड़ती हो

लगभग चार साल बीत गए हैं
पूनम की आँखों के आस—पास दर्ज
ठोस काले अँधेरे घेरों की शक्ल भी
अब धुँधली हो गई है
हमारी शान्ति
—उसकी आत्मा के लिए प्रार्थना
—पूनम ने विस्मय से पूछा
यह सब किसलिए
जब वह हमेशा मेरे साथ है
रहा है और रहेगा भी

वह यहाँ है
यहाँ , मेरे पास , मेरे भीतर

—अंग्रेज़ी से अनुवाद : डॉ. शीतांशु कुमार, हिंदी विभाग,
असम विश्वविद्यालय, सिल्चर

* इस पंक्ति के बाद कोष्ठक में मूल कविता में निम्न पंक्ति है :
'हमें रोकना होगा प्रदूषण'। अनुवाद क्रम में अनुवादक ने
भावप्रवाह की दृष्टि से इसे शामिल करना उचित नहीं समझा।

जेएनयू में राजभाषा हिंदी की स्थिति बेहतर है

संदीप चटर्जी



डॉ. संदीप चटर्जी जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में कुलसचिव के पद पर कार्यरत हैं। वे कविताएं एवं कहानियाँ भी लिखते हैं। यहाँ प्रस्तुत है, विश्वविद्यालय में राजभाषा हिंदी की स्थिति के संबंध में उनसे गणपत तेली से हुई बातचीत के महत्त्वपूर्ण अंश। उनके साथ इस बातचीत में मौजूद थे, के.एम. शर्मा और ओमप्रकाश दीवान।

जेएनयू में राजभाषा हिंदी की स्थिति कैसी है ?

दिल्ली में स्थित अन्य केन्द्रीय विश्वविद्यालयों की तुलना में जेएनयू में राजभाषा हिंदी की स्थिति काफी बेहतर है। परिसर में अधिकांश छात्र परस्पर बातचीत में हिंदी का प्रयोग करते हैं। विश्वविद्यालय के विभिन्न क्लबों—नाट्य क्लब, सांस्कृतिक क्लब, साहित्यिक क्लब, वाइल्ड लाइफ क्लब, यूनेस्को क्लब आदि—की भाषा अधिकांशतः हिंदी ही है। परिसर में समय—समय पर संगोष्ठियाँ, सम्मेलन, मुशायरे, कवि सम्मेलन, नाट्य मंचन आदि विविध प्रकार की गतिविधियों/आयोजनों में राजभाषा हिंदी का प्रयोग अधिकाधिक रूप में हो रहा है।

क्या कार्यालयों में भी हिंदी में कार्य हो रहा है ?

मुझे जेएनयू में कुलसचिव के पद पर काम करते हुए दो वर्ष पूरे हो चुके हैं और यहाँ कार्यालयों में हिंदी के काम में काफी ईजाफा हुआ है। हमारे कुलपति महोदय भी हिंदी में खुद भी काम करते हैं और अन्य लोगों को भी प्रोत्साहित करते रहते हैं। अधिकांशतः पत्राचार हिंदी में हो रहा है। कार्यालयों में उपलब्ध सभी स्टैंडर्ड फार्मेट/फार्म द्विभाषी रूप में उपलब्ध हैं। हमने हिंदी एकक के सहयोग से एक द्विभाषी फाइल कवर भी तैयार करवाया है, जिसके दूसरे पृष्ठ पर दैनिक प्रयोग में आने वाली छोटी—छोटी टिप्पणियाँ/वाक्यांश, तीसरे पृष्ठ पर विश्वविद्यालय के विभिन्न संस्थानों एवं केन्द्रों के नाम और पिछले पृष्ठ पर विश्वविद्यालय के अधिकारियों के पदनाम द्विभाषी रूप में प्रकाशित कराए गए हैं। इस द्विभाषी फाइल कवर की काफी सराहना हुई है और मैं समझता हूँ कि इस तरह के प्रयास विश्वविद्यालय में राजभाषा हिंदी को सरल और सहज ढंग से अंगीकृत करने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

क्या विश्वविद्यालय में राजभाषा अधिनियम 1963 की धारा 3(3) का अनुपालन हो रहा है ?

राजभाषा अधिनियम 1963 की धारा 3(3) के अनुपालन के प्रति हम काफी सजग हैं। इस धारा के अंतर्गत शामिल सभी संकल्प, सामान्य आदेश, नियम, अधिसूचनाएं, प्रशासनिक एवं अन्य रिपोर्ट, प्रेस विज्ञापियाँ, संसद के किसी सदन या दोनों सदनों के समक्ष रखी जाने वाली प्रशासनिक रिपोर्ट, विश्वविद्यालय की वार्षिक रिपोर्ट, वार्षिक लेखे, लेखा परीक्षा रिपोर्ट, टेंडर नोटिस, टेंडर फार्म आदि सभी दस्तावेज द्विभाषी रूप में तैयार एवं जारी किए जाते हैं। नियुक्ति संबंधी परीक्षाओं में प्रश्न पत्र हिंदी और अंग्रेजी में उपलब्ध कराए जाते हैं और हिंदी में उत्तर देने की

छूट दी जाती है। उम्मीदवारों को साक्षात्कार में हिंदी का प्रयोग करने की छूट दी जाती है। विश्वविद्यालय के विभिन्न पाठ्यक्रमों में प्रवेश के लिए आयोजित परीक्षा में भी छात्र इच्छानुसार हिंदी में उत्तर दे सकते हैं। कार्यालयों में उपलब्ध सभी कंप्यूटरों पर हिंदी में कामकाज करने के लिए यूनिकोड फॉन्ट उपलब्ध है।

गृह मंत्रालय द्वारा जारी वार्षिक कार्यक्रम के लक्ष्यों की प्राप्ति के संबंध में कुछ प्रकाश डालें।

भारत सरकार के गृह मंत्रालय के राजभाषा विभाग द्वारा प्रत्येक वर्ष राजभाषा हिंदी के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए एक वार्षिक कार्यक्रम जारी किया जाता है। वर्ष 2013-14 का वार्षिक कार्यक्रम प्राप्त हो चुका है। इस संबंध में 22 मार्च 2013 को अनुभाग अधिकारियों की एक बैठक बुलाई गई और वार्षिक कार्यक्रमों के सभी मदों पर क्रमवार चर्चा करते हुए, उन्हें निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए निर्देश दिए गए। वार्षिक कार्यक्रम पर विश्वविद्यालय की राजभाषा कार्यान्वयन समिति में भी चर्चा की गई और यह निर्णय लिया गया कि वार्षिक कार्यक्रम की प्रति सभी संस्थानों के डीन, केन्द्रों/विशेष केन्द्रों के अध्यक्षों एवं प्रशासनिक अधिकारियों को यह अनुरोध करते हुए भेजी जाए कि यह संवैधानिक और सांविधिक दायित्व है और इसका कार्यान्वयन सुनिश्चित करने के यथासंभव प्रयास किए जाएँ।

क्या विश्वविद्यालय में कर्मचारियों को हिंदी में कामकाज करने का प्रशिक्षण दिया जाता है ?

भारत सरकार के राजभाषा संबंधी दिशानिर्देशों का अनुपालन करते हुए, विश्वविद्यालय में कर्मचारियों, अनुभाग अधिकारियों और अधिकारियों के लिए हिंदी पखवाड़ा के दौरान पाँच—पाँच दिन की प्रशिक्षण कार्यशालाएँ आयोजित की जाती हैं। इन कार्यशालाओं के लिए केन्द्रीय हिंदी संस्थान के शिक्षकों तथा अन्य विद्वानों के व्याख्यान आयोजित करने के साथ—साथ व्यावहारिक प्रशिक्षण भी दिया जाता है। अन्त में एक लिखित प्रतियोगिता आयोजित की जाती है और इसमें प्रथम, द्वितीय और तृतीय स्थान पाने वाले प्रतिभागियों को नगद पुरस्कार भी दिए जाते हैं। इनके अतिरिक्त प्रत्येक तिमाही में एक प्रशिक्षण कार्यशाला भी आयोजित होती है। सितम्बर माह में हिंदी दिवस का आयोजन किया जाता है। इस अवसर पर कुलपति, कुलदेशिक, वित्त अधिकारी, समन्वयक (मूल्यांकन) एवं कुलसचिव उपस्थित रहते हैं और विद्वानों को व्याख्यान देने के लिए आमंत्रित किया जाता है।

इनके अतिरिक्त कोई अन्य कार्यक्रम/कदम जो राजभाषा के प्रचार-प्रसार के लिए सहायक हों ?

विश्वविद्यालय में समय-समय पर हिंदी में राष्ट्रीय संगोष्ठियाँ/सम्मेलन/संवाद आयोजित किए जाते रहे हैं, जो स्वतः हिंदी के प्रचार-प्रसार में सहायक सिद्ध हुए हैं। कुछ महत्वपूर्ण संगोष्ठियाँ हैं – (1) भाषा बंधन : परिसंवाद, (2) हिंदी का भविष्य-भविष्य की हिंदी (3) कंप्यूटर में हिंदी सुविधा और संबंधित समस्याएं, (4) हिंदी प्रयोग के 50 वर्ष (5) हिंदी संवाद-एक वर्षीय व्याख्यानमाला, (6) यात्रा साहित्य में भारतीय संस्कृति और सभ्यता की अभिव्यक्ति (7) अप्रवासी समाज और साहित्य, (8) जापान में हिंदी काफ़ी आगे है – जापानी विद्वान प्रो. मिजोकामी के साथ हुई एक परिचर्चा। इन सभी संगोष्ठियों में हिंदी में परिचर्चाएं आयोजित की गईं, हिंदी में व्याख्यान दिए गए, हिंदी में समीक्षाएं की गईं।

हाल ही में 12 अप्रैल 2013 को विश्वविद्यालय ने हिंदी में विज्ञान लेखन के महानायक गुणाकर मुले की स्मृति में एक व्याख्यानमाला शुरू की है। प्रोफेसर सुधीर कुमार सोपोरी की अध्यक्षता में आयोजित इस व्याख्यानमाला के अंतर्गत पहला व्याख्यान "भारतीय एवं यूनानी चिंतन परम्परा" विषय पर प्रोफेसर उदय कुमार अरोड़ा ने दिया। यह इस कड़ी का पहला व्याख्यान था और दूसरा व्याख्यान अगले वर्ष जनवरी माह में श्री गुणाकर मुले के जन्म दिवस पर आयोजित करने का प्रस्ताव है।

मैं यहाँ यह भी कहना चाहूँगा कि विश्वविद्यालय ने अपनी सभी उपाधियों/डिप्लोमा/सर्टीफिकेट द्विभाषी (हिंदी-अंग्रेज़ी) रूप में तैयार करवाकर इन्हें विद्या परिषद से अनुमोदित करा लिया है। यह भी निर्णय लिया गया है कि शैक्षिक वर्ष 2013-14 में प्रवेश पाने वाले छात्रों को उपाधियाँ द्विभाषी रूप में प्रदान की जाएगीं।

हाल ही में विश्वविद्यालय की गृह पत्रिका – 'जेएनयू परिसर' का प्रकाशन हुआ, इस संबंध में आप कुछ प्रकाश डालना चाहेंगे।

जब मैंने विश्वविद्यालय में कुलसचिव के पद पर ज्वाइन किया तो मुझे पता चला कि विश्वविद्यालय की हिंदी में कोई गृह पत्रिका नहीं है। इस संबंध में मैंने कुलपति महोदय से आग्रह किया कि विश्वविद्यालय की अपनी एक गृह पत्रिका होनी चाहिए और उनके सहयोग से संपादकीय मंडल का गठन हुआ, कुछ

बैठकों की सार्थक उपलब्धि के उपरांत अंत में 10 जनवरी 2013 को विश्वविद्यालय में विश्व हिंदी दिवस समारोह के अवसर पर कुलपति महोदय ने जेएनयू परिसर नामक विश्वविद्यालय की गृह पत्रिका का लोकार्पण किया। इस अवसर पर उन्होंने कहा कि "यह पत्रिका विश्वविद्यालय समुदाय की बौद्धिक चेतना का दर्पण" है। जेएनयू परिसर पत्रिका में प्रकाशित रचनाएं शिक्षकों, अधिकारियों, छात्रों एवं कर्मचारियों की हैं, जो विश्वविद्यालय में हिंदी के प्रचार-प्रसार एवं प्रयोग का सुस्पष्ट प्रमाण है। निःसंदेह यह एक ऐसी पत्रिका है, जो विश्वविद्यालय में हो रहे हिंदी के प्रयोग का एक जीवन्त उदाहरण है। हालाँकि लोगों की धारणा है कि अंतरराष्ट्रीय स्तर के विश्वविद्यालयों में केवल अंग्रेज़ी का ही प्रयोग होता है, हिंदी का नहीं। लेकिन मैं कहना चाहूँगा कि ऐसा जेएनयू में नहीं है, इस मामले में जेएनयू एक अपवाद है, यहाँ हिंदी का भी अधिकाधिक प्रयोग होता है, जोकि जेएनयू परिसर पत्रिका में प्रकाशित हिंदी की रचनाओं से परिलक्षित हो रहा है। पत्रिका का दूसरा अंक (छमाही प्रकाशित) हिंदी पखवाड़ा एवं शिक्षक दिवस के दौरान आने वाला है। निकट भविष्य में पर्यावरण विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, अंतरराष्ट्रीय अध्ययन और विज्ञान की विभिन्न शाखाओं से संबंधित विशेषांक प्रकाशित करने का प्रस्ताव है।

और कुछ आप विशेष रूप से बताना चाहें ?

हाँ, मैं यह भी बताना चाहता हूँ कि विश्वविद्यालय की वेबसाइट हिंदी में भी उपलब्ध है। सारी जानकारी आप हिंदी वेबसाइट को खोलकर प्राप्त कर सकते हैं। समय-समय पर इसे अद्यतन किया जाता है। फरवरी 2013 में विश्वविद्यालय में राजभाषा हिंदी के प्रयोग से संबंधित निरीक्षण करने के लिए संसदीय राजभाषा समिति की पहली उप समिति ने विश्वविद्यालय में हिंदी में हो रहे कामकाज का निरीक्षण किया और विश्वविद्यालय की हिंदी में तैयार की गई वेबसाइट को भी देखा और इसकी प्रशंसा करते हुए कहा कि यह एक सराहनीय प्रयास एवं दूसरे विश्वविद्यालयों को भी इसका अनुसरण करना चाहिए।

यहाँ उल्लेखनीय है कि विश्वविद्यालय की यह वेबसाइट सीआईएस, जेएनयू तथा इसके लिए गठित समिति का प्रयास है जिसके सदस्य थे : डॉ. देवेन्द्र चौबे, डॉ. डी.के. लोबियाल, डॉ. गिरीशनाथ झा एवं 'सीआईएस' से सुश्री रितु निधि। इसका अनुसंधान भी विश्वविद्यालय द्वारा ही किया जा रहा है एवं इसके लिए कोई बाहरी सेवाएं नहीं ली जा रही हैं। इस संबंध में सभी के सहयोग के लिए मैं आभारी हूँ।

हिन्दी के द्वारा ही सारे भारत को एक सूत्र में
पिरोया जा सकता है।

—स्वामी दयानन्द

है भव्य भारत ही हमारी मातृभूमि हरी-हरी
हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा और लिपि है नागरी।

—मैथिलीशरण गुप्त



विज्ञान एवं वैज्ञानिक चिंतन पूर्व और पश्चिम

उदय प्रकाश अरोड़ा

पिछले दिनों जेएनयू की तरफ से हिंदी में पहला गुणाकर मुले स्मृति व्याख्यान संपन्न हुआ। व्याख्यान दिया प्रसिद्ध इतिहासकार प्रो. उदय प्रकाश अरोड़ा ने एवं परिचय प्रस्तुत किया प्रसिद्ध पत्रकार प्रवीण उपाध्याय ने। कार्यक्रम की अध्यक्षता विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. सुधीर कुमार सोपोरी ने की। यहाँ प्रस्तुत है ,उस व्याख्यान और परिचय लेख के कुछ अंश – सं.

गुणाकर मुले जी ने अपना सारा जीवन स्वतंत्र रूप से वैज्ञानिक विषयों पर लेखन और चिंतन करने में ही लगाया। वैज्ञानिक विषयों की व्याख्या उन्होंने अत्यंत दिलचस्प ढंग से की है। हम कह सकते हैं कि वैज्ञानिक विषयों को साहित्य के निकट लाकर उन्होंने विज्ञान और साहित्य के बीच की खाई को समाप्त करने की चेष्टा की है। विभिन्न वैज्ञानिक विषयों पर हिन्दी में लिखकर उन्होंने न केवल विज्ञान को दिलचस्प और लोकप्रिय बनाया है, बल्कि हिन्दी साहित्य को भी समृद्ध किया है। उनकी स्मृति में दिए गए व्याख्यान पर आधारित इस लेख को प्रस्तुत करते हुए लेखक स्वयं को बहुत गौरवान्वित अनुभव करता है।

विज्ञान को चीनी विज्ञान, इस्लामी विज्ञान, यूनानी विज्ञान अथवा भारतीय विज्ञान जैसी सीमाओं में बाँटा नहीं जा सकता। भारत में इधर वैदिक गणित की खूब चर्चा की जाती है। गुणाकरजी ने इसका जमकर विरोध किया था। उनका कहना था कि गणित केवल गणित है। वैदिक गणित नाम की कोई चीज नहीं होती। विज्ञान का जो रूप आज है, वह विभिन्न सभ्यताओं के संयोग का परिणाम है।

आधुनिक विज्ञान यूरोप की देन है, यह एक भ्रमपूर्ण धारणा है। आधुनिक युग के उदय और मध्ययुग के अन्त का श्रेय जिन तमाम वैज्ञानिक अविष्कारों को जाता है, उनमें तीन सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं – बारूद, कुतुबनुमा और प्रिंटिंग प्रेस। कुतुबनुमा के बल पर यूरोप नें भौगोलिक यात्राएँ कर नवीन स्थानों की खोज की, बारूद के बल पर उपनिवेशों पर अधिकार स्थापित किया तथा कागज और प्रिंटिंग प्रेस के आधार पर ज्ञान के प्रसार पर भी अपना अधिकार बनाया। सामान्यतः यह माना जाता था कि यह सब कुछ यूरोप की अपनी खोजें हैं, किन्तु नीधम ने यह निष्कर्ष निकाला कि जिन उपरोक्त आविष्कारों के कारण यूरोप का आधुनिक युग में वर्चस्व स्थापित हुआ वे यूरोप की नहीं, चीन की देन हैं। लाभ यूरोप ने उठाया, जब कि अविष्कार चीन ने किया। नीधम के अनुसार केवल उपरोक्त उल्लिखित चीजें ही नहीं, दूसरे अनेक आधुनिक अविष्कारों की उत्पत्ति भी चीन से है।

इसी प्रकार प्लास्टिक सर्जरी, अंकज्ञान, शून्य और दशमलव पद्धति का ज्ञान भारत से यूरोप में अरबों के माध्यम से पहुँचा। यह दुर्भाग्य का विषय है कि किसी नीधम ने चीन के समान भारत के विज्ञान और टेक्नोलॉजी के इतिहास का गहन अध्ययन नहीं किया। यदि ऐसा अध्ययन किया गया होता, तो उपरोक्त के अतिरिक्त हमें तमाम ऐसे विषयों के बारे में पता चलता, जो कि आधुनिक विज्ञान में भारत का योगदान माना जाता।

यूरोप ने एक इस भ्रांति को भी जन्म दिया कि उसकी प्राचीन सभ्यता ने यूनान में जन्म लिया। इंग्लैण्ड की अपनी प्राचीन, केल्ट सभ्यता थी। उसकी अपनी भाषा और लिपि भी थी। अंग्रेजों ने अपनी धरती की सभ्य और समृद्ध केल्ट सभ्यता को अपना प्राचीन काल न मानकर यूनान की सभ्यता से नाता जोड़ लिया, जो उनकी अपनी नहीं थी, और दूसरी संस्कृति का अपहरण कर लिया।

यहाँ यह भी जानना आवश्यक है कि जिस यूनानी सभ्यता को यूरोपियनों ने अपनी धरती का भाग माना है। वह यूरोप की उसी भूमि तक सीमित है, जो महाद्वीप में दक्षिण पूर्व की ओर एक छोटा सा भाग है। प्रारंभिक यूनानी वैज्ञानिकों, दर्शनिकों और इतिहास लेखकों का उदय एशियामाइनर के आयोनिया प्रदेश में हुआ था। होमर, हेरोडोटस, थेल्स, अनाक्सीमेण्डर अनेक्सीमेनीस, पार्मेनिडीज आदि का संबंध एशिया माइनर अर्थात् वर्तमान टर्की से था, यूनान से नहीं, जिस बौद्धिकता के लिए यूनानी संस्कृति विख्यात है, वह यूनानी बौद्धिक क्रान्ति सर्वप्रथम एशिया माइनर में आयोनिया प्रदेश के एशियाई दार्शनिकों द्वारा की गई। आयोनिया के बाद यूनानी ज्ञान विज्ञान का विकास हेलेनिस्टिक युग में हुआ। इस समय वैज्ञानिक विकास का प्रमुख केन्द्र मित्र का सिकंदरिया नगर बना। सिकंदरिया का पुस्तकालय विश्वविख्यात था। यहाँ थियोफ्रेस्टस, यूक्लिड, अरिस्टार्कस, हीरोन, इरैटोस्थनीज, आर्कमिडीज, टॉलमी और गेलेन जैसे वैज्ञानिकों ने इस नगर को अन्तर्राष्ट्रीय बौद्धिक क्रिया कलापों का केन्द्र बनाया। विज्ञान से जुड़े यूनानी नाम मुख्यतः मिस्त्र के सिकंदरिया नगर से जुड़े हैं। सिकंदरिया, अफ्रीका में है, जहाँ के

अधिकांश लोगों की चमड़ी काली होती है। यूनानी नाम वाले सिकन्दरिया के वैज्ञानिक भी काले रहे होंगे, लेकिन हमारी पाठ्य पुस्तकों में इन सबको गोरा दिखाया जाता है। कहाँ से यह जानकारी मिली इसका कोई उत्तर नहीं होता।

सिकंदरिया के बाद सीरिया के अन्तियोक तथा एशिया माइनर में स्थित पर्गमम की गणना यूनानी संस्कृति के प्रमुख अन्तर्राष्ट्रीय नगरों में की जा सकती है। मध्य एशिया और अफगानिस्तान को छूता हुआ बैक्ट्रिया तथा मध्यपूर्व के इलाके यूनानी बौद्धिक क्रियाकलापों के केन्द्र थे। यूनान का आदान प्रदान पूर्वी संस्कृतियों से था, न कि पश्चिमी। सिंधुघाटी से लेकर यूनान तक कांस्य युग से ही एक पट्टी तमाम सभ्यताओं को जोड़ती थी। इसे हम **Oriental Continuum** की संज्ञा दे सकते हैं। प्राचीन विश्व की प्रमुख सभ्यताएँ (सिंधु घाटी, बैक्ट्रिया, ईरान, मेसोपोटामिया, हिती, हिब्रू, फोनेशिया, क्रीट, यूनान) इसी पट्टी पर एक दूसरे से जुड़ी हुई विकसित हुई थी। इसका पूर्वी छोर यदि सिंधु घाटी और गंगा घाटी तक था, तो पश्चिमी, 'क्रीट और यूनान' था। प्राचीन यूनान के पतन के पश्चात् वहाँ बिजांतीनी युग में जिस चर्च ने जन्म लिया, वह भी मुख्यतः पूर्व में विकसित हुआ। बर्नाल की 'ब्लैक एथेना' पुस्तक में उन अफ्रीकी और एशियाई तत्वों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है, जो यूनानी संस्कृति के निर्माण में उत्तरदायी रहे हैं।

वस्तुतः विकसित यूरोपीय देशों को जब भारत, चीन ईरान, आदि की प्रसिद्ध सभ्यताओं के विषय में पता चला तब उन्हें यह बात खटकी कि जिस प्रकार से उनका वर्तमान उन्नत है, वैसा प्राचीन नहीं। यह कमी वे यूनान की सभ्यता का अपहरण कर उसे अपनी बनाकर पूरी कर सकते थे। स्पष्ट है कि जब यूरोप ने यूनान को अपना प्राचीन बना डाला तब सभी विद्याओं का प्रारंभ उसे यूनान से ही दिखाना था। अंग्रेज विद्वान ए.एन. व्हाइटहेड ने तो यहाँ तक कह दिया कि आधुनिक युग में विकसित सम्पूर्ण यूरोपीय दर्शन और कुछ नहीं बल्कि प्लैटो पर लिखी पाद टिप्पणियाँ हैं।

थेल्स विज्ञान का प्रवर्तक था, इस कथन को भारतीय विद्वान प्रो. देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय ने चुनौती दी है। सर्वप्रथम तो यह कहना कि थेल्स यूरोपीय था, उचित न होगा। वह एशिया माइनर का निवासी था। पुनश्च यह मानना कि भारतीयों की विज्ञान में नहीं, अध्यात्म में रुचि रही है सरासर गलत होगा। वास्तव में यह धारणा उतनी ही भ्रमपूर्ण है, जितनी यह, कि विज्ञान पश्चिम की बपौती है, जिन उपनिषद ग्रन्थों में परलोक, ब्रह्म और आत्मन् जैसे विषयों की चर्चा है, उन्हीं में ही हमें भारत के प्राचीनतम वैज्ञानिक विचार भी मिलते हैं। प्रो. चट्टोपाध्याय उपनिषदों में चर्चित दार्शनिक, पंचाल निवासी आरुणि उद्दालक का उल्लेख करते हैं, जिसने प्रकृति की प्रत्येक वस्तु का क्रमिक विकास आदि सत्ता सत् से माना है, जिसमें गतिशीलता व्याप्त थी। महत्वपूर्ण बात यह है कि अपने सिद्धान्त को प्रमाणित करने के लिए आरुणि उद्दालक ने जिस प्रक्रिया को अपनाया, उसमें

प्रत्येक बिन्दु पर अनुभवजन्य प्रायोगिक सामग्री से पुष्टि की गई। वह थेल्स की तिथि से प्राचीनतर है। इस प्रकार विश्व का प्रथम वैज्ञानिक थेल्स नहीं आरुणि उद्दालक प्रमाणित होता है।

बुद्ध के समय 63 दार्शनिक मत स्वतंत्रता पूर्वक चल रहे थे, जिनमें अनेक नास्तिक थे। प्रचलित रूढ़िगत दर्शन में सांख्य के अतिरिक्त मीमांसा और न्याय में भी दैवी सृष्टिकर्ता को महत्वपूर्ण स्थान नहीं दिया गया। प्रारंभिक बौद्ध धर्म का भी दृष्टिकोण वैज्ञानिक था। भारतीय संस्कृति में अनेक भौतिकवादी तत्वों की उपस्थिति यह प्रमाणित करती है कि इसे परलोकवादी और आध्यात्म प्रधान मानना और यूनान की संस्कृति को भौतिकवादी, तर्कवादी और विवेक युक्त मानना गलत होगा। ऐसा किसी प्रकार का भेद स्थापित नहीं किया जा सकता। भारतीय तर्क, विवेक और प्रश्न पूछने की लम्बी वैज्ञानिक परम्परा पर प्रो. अमर्त्यसेन ने अपनी पुस्तक '**Argumentative Indian (2005)**' में विस्तार से प्रकाश डाला है। नेहरू '**डिस्कवरी ऑफ इंडिया में** लिखते हैं कि 'सेमेटिक संस्कृति तथा इससे जन्मे धर्मों में परलोक सुधारने के बारे में भारत से कहीं अधिक चिंतन है।

वस्तुतः यूनानी कृतियों में यदि हम आर्फियस, पाइथागोरस, डायोगनीज, प्लैटो, प्लोटिनस और न्यूटेस्टामेण्ट पढ़ते हैं तो हमारी यही धारणा बनेगी कि यूनानी संस्कृति, जिसमें पश्चिम अपनी जड़ें खोजता है, आध्यात्मिक थी। इसी प्रकार उपनिषद् के केवल कुछ अंशों और वेदान्त ग्रन्थों को पढ़कर हम इस निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं कि भारतीय विचार परम्परा आध्यात्म प्रधान रही है। सब कुछ इस पर निर्भर करता है कि परम्परा में हम क्या चयन करते हैं? आधुनिक वैज्ञानिक और औद्योगिक क्रान्ति के युग में प्रवेश करने वाले यूरोप को आवश्यकता थी ऐसे विचारकों की जिनसे आधुनिकता से जुड़े मूल्यों के औचित्य का समर्थन किया जा सके, इसीलिए पश्चिम ने पाइथागोरस, आर्फियस, प्लैटो, प्लोटिनस आदि की उपेक्षा कर थेल्स, अरस्तु, डेमोक्रीटस, यूक्लिड, थिओफ्रेस्टस, आर्कमिडीज आदि को महत्व दिया। इसी प्रकार यदि हमने भी उपनिषद्, शंकर और बुद्ध के कुछ वाक्यों के स्थान पर कौटिल्य, ब्रह्मगुप्त, आर्यभट्ट, भास्कराचार्य, चरक, सुश्रुत, वराहमिहिर, वात्स्यायन और संस्कृत नाटकों को महत्व दिया होता तब संसार के समक्ष भारतीय संस्कृति की एक दूसरी तस्वीर उभरती। इन ग्रन्थों के पढ़ने से कहीं नहीं लगता कि भारतीय परलोकवादी हैं तथा यहाँ पुरोहितवाद का अधिपत्य है।

भारतीयों ने चिकित्साशास्त्र, औषधिशास्त्र, शल्य विज्ञान, गणित, नक्षत्र विज्ञान, रसायन शास्त्र, धातु विज्ञान, वनस्पति शास्त्र आदि वैज्ञानिक विषयों में अभूतपूर्व प्रगति की। संस्कृत भाषा को व्यवस्थित रूप देकर पाणिनी ने जो एक वैज्ञानिक व्याकरण तैयार किया उसकी तुलना करना असंभव है। आधुनिक विज्ञान के अनेक क्षेत्रों में भारतीय विज्ञान के बीज विद्यमान हैं। ऐसे कुछ उदाहरण अवश्य हैं, जिन्हें आधार मानकर भारतीय चिंतन को आध्यात्मवादी कहा जा सकता है, लेकिन उससे कहीं

अधिक उदाहरण ऐसे हैं, जिनके आधार पर भारतीय चिंतन भौतिकवादी लगता है। फिर यह धारणा कि भारत दार्शनिकों का देश है, कैसे प्रारंभ हुई ?

वस्तुतः यह धारणा कि भारत दार्शनिकों का देश है तथा भारतीय संन्यास, तपश्चर्या और त्याग को भौतिक उपभोग की उपेक्षा अधिक महत्व देते हैं, सिकन्दर के आक्रमण के बाद प्राचीन यूनानी संसार में ही प्रारंभ हो चुकी थी। सिकन्दर जब तक्षशिला में था, उसे पता चला कि नगर के बाहर कुछ नग्न दार्शनिक साधु निवास करते हैं, जिनका समाज में अत्यंत सम्मान था। सम्राट ने अपने सहयोगी ओनेसिक्रीतोस को उन नग्न साधुओं के विषय में जानकारी हासिल करने के लिए भेजा। ओनेसिक्रीतोस ने देखा कि वहाँ लगभग 16-17 साधु विभिन्न यौगिक मुद्राओं में थे। तीन अनुवादको (ग्रीक-इरानियन, ईरानियन-बैक्ट्रियन-स्थानीय भारतीय) के माध्यम से ओनेसिक्रीतोस ने उन साधुओं से विभिन्न दार्शनिक विषयों पर बातचीत की। कतिपय भारतीय और यूनानी दार्शनिक विचारों के मध्य तुलना भी की गई। ओनेसिक्रीतोस ने इस घटना का सम्पूर्ण विवरण अपने ग्रन्थ में लिखा। 300 ई.पू. के लगभग अरस्तू के भतीजे कालीस्थनीज के नाम से इस घटना को किसी अज्ञात व्यक्ति ने कुछ परिवर्तनों के पश्चात् फिर से वर्णन लिखा। दूसरी शताब्दी में प्लूटार्क ने इसे कुछ इस तरह लिखा कि सिकन्दर एक भारतीय राज्य सब्स/सम्बोस में पहुँचा जहाँ वे नग्न साधु जनता को आक्रमणकारी के विरुद्ध भड़का रहे थे। सिकन्दर ने उनमें से 10 को पकड़ लिया। उसने, उन दार्शनिकों की वाद-विवाद करने की तीव्र मेधा के विषय में सुन रखा था। सिकन्दर ने शर्त रखी कि प्रत्येक से एक प्रश्न पूछा जाएगा तथा जो संतोषजनक उत्तर देने में असफल होगा, वह मृत्युदण्ड का भागी होगा। इस प्रकार जो विवरण मूलतः दार्शनिक समस्याओं पर एक विमर्श था, पहलियों और उनके उत्तर में बदल गया। दार्शनिकों की विलक्षण बुद्धि से प्रभावित होकर अनेक उपहार देकर सिकन्दर ने उन्हें मुक्त कर दिया। यह घटना धीरे-धीरे इतनी अधिक लोकप्रिय हो गयी कि आज संसार की 24 भाषाओं में इसके 80 विभिन्न विवरण हैं। इंग्लैण्ड से लेकर मलेशिया, इंडोनेशिया तक की परम्पराओं में यह कथा प्रचलित है, अर्थात् जहाँ सिकन्दर नहीं भी गया, वहाँ तक इसका प्रसार हुआ। सर्वत्र एक ही उद्देश्य था, कि तपश्चर्या, संन्यास और त्याग की महत्ता को सिकन्दर की साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षा और यूनानी संसार के उपभोगवाद के ऊपर प्रतिष्ठापित करना।

छद्म कालीस्थनीस के विवरण की लोकप्रियता का यह परिणाम हुआ कि भारत के विषय में सर्वत्र यह धारणा बन गयी कि भारत दार्शनिकों का देश है। पाइथागोरस, प्लैटो, डिमोक्रिटोस और अपोलोनियस आदि दार्शनिकों का, ज्ञान प्राप्त करने के लिए भारत यात्रा का उल्लेख किया गया है। जर्मन रोमांटिज्म आंदोलन में जिसमें श्लेगल, शॉपनहॉवर, शिलर, आदि का विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है, इस विचारधारा को और अधिक सुदृढ़ बनाया। भारतीयों के लिए यह

संदेश उपनिवेशवाद के अनुकूल पड़ता था कि यदि तुम विज्ञान के क्षेत्र में आगे नहीं बढ़े तो क्या हुआ, तुमने पारलौकिक चिंतन पर तो जोर दिया, जो सांसारिक उपलब्धियों से बढ़कर है। इस बहकावे ने साम्राज्य का सुख भोगने और वैज्ञानिक विकास को तो यूरोप के हिस्से में रखा और पारलौकिक चिंतन को भारतीयों के हिस्से में। इस प्रकार की मनोदशा के विकास को प्रोत्साहन और संरक्षण देकर अंग्रेजों के लिए भारत को लम्बे समय तक परतंत्र बनाए रखना और अधिक सरल हो गया।

लगभग 1500 ई. तक यूरोप के देश ज्ञान-विज्ञान में एशिया से बहुत पिछड़े थे। इस समय तक समृद्धता और ज्ञान दोनों में दो देश प्रमुख थे, पहले चीन और फिर भारत। लम्बी पृष्ठभूमि के बावजूद विज्ञान और टेक्नोलॉजी के विकास में एशियाई देश पिछड़ जाते हैं और आधुनिक युग को जन्म देने का श्रेय यूरोप को मिल जाता है। इस्लामी मध्यपूर्व संसार, चीन और भारत में विज्ञान का विकास क्यों रुक गया ? ये प्रश्न आज हमारे लिए पहेली बन चुके हैं।

विज्ञान को अपना रास्ता बनाने के लिए समय-समय पर धर्म से संघर्ष करना पड़ा। यूरोप में यद्यपि धर्म और राज्य की सत्ता के मध्य विभाजन हो गया था तथापि वैज्ञानिकों को चर्च का विरोध झेलना पड़ा, लेकिन तमाम तरह की बाधाओं, और जिंदा जला देने की सजा के बावजूद, वैज्ञानिकों ने विज्ञान के प्रति निष्ठा दिखाई और उसे आगे बढ़ाया। भारत में शिल्प, शूद्रों के हाथ में रहा है जबकि ज्ञान पर एकाधिकार सवर्णों का। यूरोप में इस दीवार को तोड़ दिया गया था। तकनीकी काम करने वाले और ज्ञान के संरक्षकों के बीच तालमेल था, जिससे औद्योगिक क्रान्ति संभव हो सकी। दार्शनिक स्तर पर तो भारत में अत्यंत उच्च स्तर के समानता की चर्चा की गई। सब में एक ही आत्मा प्रवाहित होती है, न केवल चेतन में बल्कि जड़ में भी, किन्तु सामाजिक स्तर पर जातियों में भेदभाव, जो दर्शन में था, वह सामाजिक स्तर पर नहीं था। चीन तकनीकी दृष्टि से मध्य युग में भी यूरोप से बेहतर था। चीन के पिछड़ जाने का कारण उसकी वह सामंतवादी व्यवस्था थी, जो यूरोपीय सामंतवादी व्यवस्था से भिन्न थी। कनयूशिस विचारधारा व्यापार के अनुकूल नहीं थी, व्यापार सीमित स्तर पर था। भारत और चीन दोनों देशों की अपनी नीति साम्राज्य विस्तार की नहीं रही है।

साम्राज्यवादियों को एक ऐसे महानायक की आवश्यकता थी जिसके माध्यम से वे अपने लूट और नरसंहार को न्याय संगत दिखा सकें। प्राचीन यूनानी संस्कृति को तो उन्होंने अपना प्राचीन बना ही लिया था। महानायक के रूप में उन्हें सिकंदर मिल गया। प्राचीन समय में सिकंदर के अभियान को प्लूटार्क और कुछ अन्य यूनानी लेखकों ने नरसंहार नहीं, यूनानी सभ्यता को प्रसार के रूप में देखा। उसी तर्ज पर यूरोपियनों ने अपने साम्राज्य विस्तार को पूर्वी देशों को सभ्य बनाने का मिशन बताया। यह एक अनकही गाथा है कि पश्चिम की सफलता उसकी श्रेष्ठता के कारण नहीं, किन्तु इसलिए हुई कि वह दूसरों को कुचलने में सफल हुआ।

विज्ञान लेखन के प्रति समर्पित व्यक्तित्व : गुणाकर मुले

प्रवीण उपाध्याय



हिंदी के मूर्धन्य लेखक गुणाकर मुले की स्मृति में आयोजित व्याख्यान में आज यहां बोलने का सुअवसर प्रदान कर आपने मुझे तो कृतकृत्य किया ही है, मुझे अपनी औकात आंकने का भी सुयोग प्रदान किया है।

मुझसे आग्रह किया गया है कि मैं यहां गुणाकर मुले का परिचय प्रस्तुत करूं। ... जहां तक मैं समझता हूं हिंदी जगत में विशेष रूप से विज्ञान लेखन की दुनिया में गुणाकर मुले एक ऐसा नाम है, एक ऐसा विराट व्यक्तित्व है, जो किसी परिचय का मोहताज नहीं है।

विज्ञान और टेक्नॉलोजी के विद्यार्थी, उन्हें विज्ञान लेखक के रूप में जानते हैं। इतिहासकार उन्हें इतिहासविद के रूप में पहचानते हैं। गणित और ज्योतिष के जानकार उन्हें गणित का विद्वान मानते हैं। बाल-साहित्य के रचनाकार उन्हें अपनी बिरादरी में शामिल करते हैं। भारतीय दर्शनशास्त्र के अध्येता और पुरातत्त्ववेत्ता उन्हें अपना समझते हैं।

कहने का अर्थ है कि कोई विषय उनसे अछूता नहीं था। गुणाकर जी आजादी के बाद उभरी खांटी देशी बुद्धिजीवियों की उस पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते थे, जिनमें नव-स्वतंत्र देश की जागरूक पीढ़ियां तैयार करने का जज्बा था। मराठी भाषी होने के बावजूद उन्होंने व्यापक राष्ट्रहित में हिंदी में लेखन किया। गणित उनका पसंदीदा विषय था, इसलिए वह भारतीय अंक पद्धतियों के उद्भव और विकास की ओर आकर्षित हुए।

भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली ने इतिहास और पुरातत्त्व संबंधी उनकी विद्वता का सम्मान करते हुए उन्हें दो साल की फेलोशिप प्रदान की थी। इस फेलोशिप के तहत उन्होंने 1994 से 1996 तक भारतीय इतिहास और टेक्नॉलोजी के इतिहास का गहन अध्ययन-अनुशीलन किया और आगे चलकर अनेक पुस्तकें लिखीं। हिंदी की पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिखे। रेडियो और दूरदर्शन पर विज्ञान संबंधी जानकारी प्रसारित करने के लिए कई कार्यक्रमों के निर्माण में सहयोग दिया।

फिर 1999 में भारत सरकार के विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग की इकाई 'विज्ञान प्रसार' ने उन्हें दो साल की फेलोशिप दी। इस फेलोशिप के दौरान उन्होंने भारतीय विज्ञान और प्रौद्योगिकी, अंतरिक्ष विज्ञान, खगोलशास्त्र, कृषि विज्ञान और प्राचीन भारतीय वैज्ञानिकों की उपलब्धियों और आविष्कारों से संबंधित सामग्री जुटाई। उसका हिंदी में सरल भाषा में अनुवाद किया और हिंदी के पाठकों तक पहुंचाया।

हिंदी में विज्ञान लेखन की दशा पर उनका कहना था – “हिंदी के साहित्यकार और आलोचक विज्ञान संबंधी साहित्य की उपेक्षा करके हिंदी का बहुत बड़ा नुकसान कर रहे हैं। हिंदी में विज्ञान के पाठकों की संख्या कविता-कहानी के पाठकों की संख्या से बहुत ज्यादा है। मेरा यह प्रयास रहा है कि सरल भाषा में नए-नए विषयों पर लिखूं। उन विषयों पर जिन पर पहले नहीं लिखा गया है।”

गुणाकर जी बहुत ही सीधे, सरल और सच्चे इंसान थे। गांव से आये थे, इसलिए बहुत जल्द लोगों पर विश्वास कर लेते थे। उन्हें अपना मित्र बना लेते थे। उनका जन्म 1935 में महाराष्ट्र के विदर्भ क्षेत्र में अमरावती जिले में हुआ। जिस गांव में वह पैदा हुए उसका नाम – सिंदी बुजरूक है। उनके बचपन का नाम पंजाब राव गुलाब राव मुले था। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के लिए वर्षों में काम कर रहे भदंत आनंद कौसल्यायन से उनका घनिष्ठ संबंध था। गुणाकर जी के नामकरण के पीछे भी आनंद कौसल्यायन का हाथ था, उनके संपर्क में आने के पश्चात ही गुणाकर जी हिंदी की ओर आकर्षित हुए।

गुणाकर जी की आरंभिक पढ़ाई-लिखाई गांव के स्कूल में ही मराठी माध्यम से हुई। गांव में ही एक निजी पाठशाला में 'लघुसिद्धांत कौमुदी' के स्तर तक संस्कृत की पढ़ाई की। फिर आगे की पढ़ाई के लिए वह इलाहाबाद चले गए। स्नातक और स्नातकोत्तर की शिक्षा उन्होंने गणित विषय लेकर इलाहाबाद विश्वविद्यालय से पूरी की।

लेखन कार्य उन्होंने 1958 में शुरू किया। इसके बाद उनकी कलम रुकी नहीं। करीब 50 वर्षों से भी अधिक समय तक वह अध्ययन और लेखन में जुटे रहे। संस्कृत, पाली, प्राकृत, अरबी, फारसी और अंग्रेजी में भारतीय दर्शनशास्त्र, इतिहास, विज्ञान, गणित और ज्योतिष शास्त्र से संबंधित जो भी दुर्लभ दस्तावेज तथा महत्वपूर्ण सामग्री मिली उसे संग्रहित किया। उसका हिंदी में या तो स्वयं अनुवाद किया या जो भाषा उन्हें नहीं आती थी, उसका अनुवाद करा कर हिंदी के पाठकों के सामने लाए।

गुणाकर जी की एक खासियत थी। उन्होंने सिर्फ बड़ी-बड़ी पोथियां नहीं लिखीं। बच्चों के लिए भी खूब लिखा, जम कर लिखा। वैज्ञानिकों की जीवन कथाएं, वैज्ञानिक आविष्कारों के बारे में, ब्रह्मांड और प्रकृति के रहस्यों के बारे में, उन्होंने सरल और सुबोध भाषा में बच्चों के लिए अनेक छोटी-छोटी पुस्तिकाएं लिखीं। बाल साहित्य का सृजन करते वक्त वह उसमें रोचकता का समावेश अवश्य करते थे, ताकि बच्चे बोर न हों।

मैं जब तक 'आजकल' पत्रिका में संपादक रहा, वह बराबर मेरे लिए लिखते रहे। प्रकाशन विभाग में जब मैंने हिंदी और अंग्रेजी की पुस्तकों के प्रकाशन का दायित्व संभाला तो उन्होंने हमारे लिए कई पुस्तकें लिखीं। हमारी पत्रिका 'बाल भारती' में बच्चों के लिए निरंतर लेख देते रहे।

इस अकिंचन को उनकी कई पुस्तकों का संपादन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। आज मुझे यह बताते हुए गर्व महसूस हो रहा है कि मैंने उनकी पुस्तक : 'अक्षर कथा', महान गणितज्ञ—ज्योतिषी आर्यभट, तारों भरा आकाश और सन् 2009 में पहली बार प्रकाशित हुई पुस्तक 'अल्बर्ट आइंस्टाइन' का संपादन किया है।

विज्ञान का विद्यार्थी होने के नाते मैंने उन्हें हमेशा अपना गुरु माना। उन्होंने भी मुझे हमेशा अपने शिष्य की तरह स्नेह दिया। मुझे नहीं याद है कि कभी उन्होंने मेरे आग्रह या सुझाव को तुकराया हो। वह अपना लिखा हुआ काटते नहीं थे। बहुत नपा—तुला सोच—समझकर लिखते थे। हर तथ्य की बारीकी से जांच—पड़ताल के बाद लिखते, ताकि संपादन की कोई गुंजाइश न रहे, मेरा यह सौभाग्य रहा कि उनके साथ कार्य करते हुए मुझे कभी कोई कठिनाई महसूस नहीं हुई। मैंने उनसे बहुत—कुछ सीखा।

गुणाकर जी का जो रचना—संसार है वह कितना विविध है, इसका अंदाजा उनकी कृतियों से लगाया जा सकता है। उन्होंने 50 से अधिक मौलिक पुस्तकें हिंदी में लिखीं। तीन हजार से अधिक लेख हिंदी में और लगभग 250 लेख अंग्रेजी में विभिन्न पत्र—पत्रिकाओं के लिए लिखे।

उनकी कुछ प्रमुख कृतियां हैं : अक्षर कथा, 'भारत—इतिहास और संस्कृति', आकाश दर्शन, संसार के महान गणितज्ञ, महान गणितज्ञ—ज्योतिषी : आर्यभट, ब्रह्माण्ड परिचय, तारों भरा आकाश, अंतरिक्ष यात्रा, महाराष्ट्र के दुर्ग, भारतीय लीपियों की कहानी, भारतीय विज्ञान की कहानी, महापंडित राहुल सांकृत्यायन, भारतीय अंक पद्धति की कहानी, भारतीय इतिहास में विज्ञान, अल्बर्ट आइंस्टाइन आर्किमीदीज, केपलर और ज्यामिति की कहानी। संस्कृति और सांप्रदायिकता पर निबंध भी लिखा।

गुणाकर जी बहुत ही कर्मठ और स्वाभिमानी थे। स्वाभिमानी

इतने कि कभी किसी के आगे हाथ नहीं फेलाया। किसी की चाकरी नहीं की। स्वतंत्र लेखन को ही अपनी जीविका का साधन बनाया। अंतिम समय तक लिखते रहे। सन् 2009 में 16 अक्टूबर को उन्होंने इस संसार से विदा ली। उस समय वह कई पुस्तकों पर एकसाथ काम कर रहे थे। उनकी पांडुलिपियां तैयार कर रहे थे।

अपने जीवन के अंतिम वर्षों में वह आंख की बीमारी से पीड़ित थे। शरीर साथ नहीं दे रहा था फिर भी कंप्यूटर पर बैठकर रात—दिन अपनी पांडुलिपियों को वह अंतिम टच दे रहे थे। शायद उन्हें आभास हो गया था कि उनके पास समय बहुत कम है, इसलिए एकसाथ कई किताबों पर काम कर रहे थे। जब उन्होंने अंतिम सांस ली, वह अपने पीछे पत्नी श्रीमती शांति, पुत्र अंशुमान, दो बेटियां देवयानी और इसके अलावा दर्जन भी किताबों की अधूरी पांडुलिपियां छोड़ गए।

गुणाकर जी की पत्नी शांति जी यहां बैठी हैं। मैं इनकी सेवा भावना, त्याग और तपस्या को नमन करता हूँ।

कहते हैं कि हर महान व्यक्तित्व की सफलता के पीछे किसी न किसी स्त्री का हाथ होता है। गांधी जी को महात्मा बनाने में 'बा' का त्याग और बलिदान आज किसी से छिपा नहीं है।

गुणाकर जी के परिवार को मैं बहुत निकट से जानता हूँ। पिछले लगभग 40 वर्षों से इस परिवार के साथ मेरा घनिष्ठ संबंध है। गुणाकर जी ने जो कुछ लिखा, जीवन में जो भी हासिल किया, उसके पीछे शांति जी की सेवा भावना, त्याग और तपस्या का बहुत बड़ा हाथ है।

गुणाकर मुझे जैसे तपस्वी हिंदी प्रेमी और हिंदी के साधक के बारे में कहने को बहुत कुछ है। बहुत सारे संस्मरण हैं, लेकिन डॉ. देवेंद्र चौबे ने मुझसे कहा था कि मैं 15 मिनट बोलूँ। इसलिये मैं अपनी बात यहीं समाप्त करता हूँ। उस पुण्य आत्मा को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

यदि कहीं मेरे से कोई त्रुटि हुई हो तो क्षमा करेंगे। एक बार फिर से आप सभी का जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय का आभार प्रकट करता हूँ।

अगर स्वराज्य अंग्रेजी बोलने वाले भारतीयों का और उन्हीं के लिए होने वाला हो तो निःसंदेह अंग्रेजी ही राष्ट्रभाषा होगी, लेकिन अगर स्वराज्य करोड़ों भूखों मरने वालों का, करोड़ों निरक्षरों का, निरक्षर बहनों का और दलितों और अंग्रेजों का हो और इन सबके लिए हो तो हिन्दी ही एकमात्र राष्ट्रभाषा हो सकती है।

—महात्मा गांधी

कहीं पहुँचने की उम्मीद

आखिर

ठहर ही जाता है

बिना कहीं पहुँचने की उम्मीद लिए



रचाता है कई सुखद भ्रम
ऊपर होने का व्यक्तिगत दम्भ
दिलाता है निरन्तर
खुद ही को झूठा विश्वास –